बंगला और उसका साहित्य

बंगला-भाषा और साहित्य का परिचयात्मक विश्लेषण :

लेखक

श्री हसकुमार तिवारी

सम्पादक क्षेमचन्द्र 'सुमन'

सरस्वती सहकार, दिल्ली

की ओर से प्रकाशक

राजकमल प्रकाशन

दिल्ली बम्बई नई दिल्ली

निवेदन

स्वतन्त्र भारत के साहित्यिक विकास मे भारत की भाषाओ तथा उपभाषाओ का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। आज यह अत्यन्त खेद का विषय है कि हमारे देश का अधिकाश पठित जन-समुदाय अपनी प्रादेशिक और समृद्ध जनपदीय भाषाओं के साहित्य से सर्वथा अपरिचित है। कुछ दिन पूर्व हमने 'सरस्वती सहकार' सस्था की स्थापना करके उसके द्वारा 'भारतीय साहित्य-परिचय' नामक एक पुस्तक-माला के प्रकाशन की योजना बनाई और इसके अन्तर्गत भारत की लगभग २७ भाषाओ और समृद्ध उपभाषाओं के साहित्यिक विकास की रूप-रेखा का परिचय देने वाली पुस्तके प्रकाशित करने का पुनीत संकल्प किया। इस पुस्तक-माला का उद्देश्य हिन्दी-भाषी जनता को सभी भाषाओं की साहित्यिक गति-विधि से अवगत कराना है।

हर्ष का विषय है कि हमारी इस योजना का समस्त हिन्दी-जगत् ने उत्फुल्ल हृदय से स्वागत किया है। प्रस्तुत पुस्तक इस पुस्तक-माला का एक मनका है। आशा है हिन्दी-जगत् हमारे इस प्रयास का हार्दिक स्वागत करेगा। इस प्रसग में हम पुस्तक के लेखक श्री हसकुमार तिवारी के हार्दिक आभारी है, जिन्होंने अपने व्यस्त जीवन मे से कुछ अमूल्य क्षण निकालकर हमारे इस पावन यज्ञ मे सहयोग दिया है। राजकमल प्रकाशन के सञ्चालकों को भूल जाना भी भारी कृतघ्नता होगी, जिनके सक्रिय सहयोग से हमारा यह स्वप्न साकार हो सका है।

जी. १० दिलशाद गार्डन,
शाहदरा (दिल्ली)

—क्षेमचन्द्र 'सुमन'

प्रस्तावना

गागर मे सागर भर सकना शायद सम्भव है, किन्तु उसके लिए क्षमता और योग्यता के जिस जादू की जरूरत है, वह कम-से-कम अपने मे तो नही है, यह कबूल किये लेता हूँ। इसलिए यह असम्भव नहीं कि इस संक्षिप्त स्वरूप मे सदियों की एक भाषा एव उसकी साहित्य-साधना की परम्परा, प्रगति, प्रवृत्ति और इतिहास को समेट लेने की चेष्टा मे कहीं त्रुटि भी रह गई हो। अपने आदियुग से बगला-साहित्य की धारा परम्परा की जिस पृष्ठभूमि पर प्रवृत्तियो की जो नई आवेग-लहरियाँ लिये वर्त-मान तक बहती आई है, उसकी एक परिचयात्मक रूपरेखा हिन्दी-पाठकों के लिए प्रस्तुत करना अपना उद्देश्य रहा है और उसमे कोई कोशिश उठा नहीं रखी गई है। अगर इस दृष्टि से यह चेष्टा कुछ उपयोगी बन पडी हो, तो मुझे अपने श्रम की सार्थकता पर खुशी होगी। किन्तु इसका जो-कुछ भी श्रेय है, वह तो भाई 'सुमन' जी को ही है, जिनकी सूझ से इसकी योजना बनी और जिनकी प्रेरणा ने इस तरह का रूप लिया।

इस पुस्तक के निर्माण मे मुझे जिन ग्रन्थों और पत्र-पत्रिकाओ से सहायता मिली है, उनके लेखक-सम्पादको के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

मानसरोवर, गया —हंसकुमार तिवारी

क्रम

१	बंगला भाषा और उसका आदिकाल	-	-	-	६
२.	आरम्भिक साहित्य की पृष्ठभूमि	-	-	-	२०
३	आदिकालीन साहित्य की रूपरेखा	-	-	-	३६
४	चैतन्य-पूर्व बंगला-साहित्य	-	-	-	४८
५.	विकास काल	-	-	-	६६
६	आधुनिक काल	-	-	-	८३
७	रवीन्द्रोत्तर काल		-	-	१३५
	सहायक ग्रन्थ	-	-	-	१४७

: १ :

बंगला भाषा और उसका आदिकाल

भाषा-उत्स की जिज्ञासा

बगला भाषा का जो स्वरूप आज हमारे सामने है, वह बहुत पुराना नही है, परन्तु स्वरूप की इस मजिल तक पहुँचने मे उसे समय की खासी लम्बी दूरी तै करनी पडी है। दुर्गमता तक पैठ पाने की एक सहज जिज्ञासा बुद्धि की होती है। पहाड की दुर्गम चोटी और नदी के अगम उद्‌गम तक जाने का दुस्साहस उसी जिज्ञासा की देन है और इसी स्वभाव से मनुष्य मे भाषाओ की पैदाइश जानने की भी ललक है। नदियो का उद्‌गम तो हम खोज लेते है, इसलिए कि उसका सम्बन्ध स्थान से होता है और उसमे केवल कठिनाई ही होती है। लेकिन भाषा की सही जन्म-तिथि नही जानी जा सकती, क्योकि वह उस काल से सम्बन्धित होती है, जिसकी अपारता को भेदने वाली आँखो का मिलना मुश्किल है। इसलिए यह बताना तो सम्भव नही कि बगला भाषा ठीक किस समय उत्पन्न हुई, पर प्राप्त सामग्रियो से उसके क्रम विकास की जो रूप-रेखा खडी होती है, उस पर से एक अनुरूप अनुमान तक पहुँचा जा सकता है।

बगला भाषा की आयु

इतिहास मे महापुरुषो के बारे मे सन्‌-तारीख देने का, (चाहे वह

विवादग्रस्त ही क्यो न हो) एक रिवाज-सा है। भाषा के बारे मे भी लोग इस तरह के फतवे दे दिया करते है। किन्ही-किन्ही की राय है कि बगला भाषा की आयु हजार साल की है। 'ललित विस्तर' मे जहाँ बुद्ध की शिक्षा का जिक्र आया है, ऐसा लिखा है कि अध्यापक विश्वामित्र उन्हे अग, बग, ब्राह्मी, सौराष्ट्री और मागधी लिपि सिखाते थे। यदि इसे मान लिया जाय, तो यह भी मानना पड़ेगा कि बगला का जन्म ईसा के जन्म से पहले हुआ। किन्तु यह बात भ्रामक है। आर्यों के आने से पहले जो लोग यहाँ बसते थे, न तो उनकी वैसी सभ्यता थी और न ही उनका कोई साहित्य था। आर्यों का यहाँ आना ईसा पूर्व तीसरी सदी से शुरू हुआ और उन्हे बसने-बसाने मे प्रायः पाँचवीं सदी तक का अरसा लग गया। उनकी लिखित भाषा सस्कृत थी, तत्कालीन ताम्र-पत्रो और भूमि-दान-पत्रो से इसका पता चलता है।

बगला की पहली पुस्तक

बगला मे लिखी गई सबसे पुरानी पोथी अभिनन्द द्वारा रचित 'रामचरित' है, जिसमे रामायण की कथा है और जो अनुमानतः आठवीं सदी की है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि कवि अभिनन्द राजा देवपाल के अनुचर थे। भारत मे पाल-वश ही बौद्ध-धर्म का अन्तिम शरणदाता रहा। इसी वश के राजत्व-काल मे, दसवी सदी के अन्तिम भाग मे यहाँ एक दूसरा काव्य रचा गया, जिसका नाम भी 'रामचरित' ही है। इसके कवि सध्याकर नन्दी है। इसमे द्व्यार्थकता से राम और राजा रामपाल के जीवन-प्रसग वर्णित है। वास्तव मे बगला-साहित्य मे प्रेरणा का सूत्रपात तो कवि जयदेव के 'गीत गोविन्द' के पदो से होता है, जिसकी गीतात्मकता और भाव-धारा से परवर्त्ती सम्पूर्ण वैष्णव-साहित्य प्रेरित और अनुप्राणित है। जयदेव लक्ष्मणसेन देव की सभा मे बारहवी सदी के अन्तिम भाग मे हुए।

भाषा की निर्बाध गति

लिखित भाषा के साथ एक परम्परागत दोष हम यह पाते है कि वह

शिक्षितो के एक छोटे-से समुदाय मे सीमित हो जाती है। श्री-सौष्ठव-वृद्धि के लिए शब्द-चयन की प्रतियोगिता तथा व्याकरण के शासन की कठोरता से वह धीरे-धीरे सर्वसाधारण से दूर होती जाती है। यही दुरूहता भाषा-विप्लव की सूचना देती है। भाषा की चिरप्रवाहमयी गति को व्याकरण के नियम बाँध-बाँधकर कभी पगु नहीं बना सकते। माहेश-व्याकरण से लेकर पाणिनि, कात्यायन, वररुचि, रूपसिद्धि, शाकल्य, भरत, कोहल, भामह, मार्कण्डेय, मौद्गल्यायन, शिलावश आदि वैयाकरण भाषा-शासन के नियम बनाते रहे, परन्तु अवस्थानुरूप भाषा अपनी गति से निर्बन्ध बहती रही। सच पूछिये, तो व्याकरण भाषा के गति-पथ का साखी गोपाल-भर होता है। भाषा उसे अग्राह्य करके सदा नया रूप लेती रही है। सस्कृत और सर्व-साधारण के बीच जब दूरी की काफी ऊँची दीवार खडी हो गई, तो प्राकृत सामने आई और यह प्राकृत भी जब जन-जीवन से दूर जा पडी, तो आधुनिक हिन्दी-बगला आदि भाषाओ का रूप स्थिर होने लगा।

गौडीय भाषा

हार्नले साहब ने इन आधुनिक भाषाओ को गौडीय भाषा कहा है और उनके हिसाब से आठवी सदी तक आकर प्राकृत का युग लुप्त होता है एवं गौडीय भाषाओ का युग आरम्भ होता है।

लोक-भाषा

कबीर ने सस्कृत को कुए का बँधा पानी कहा था और भाषा को गति-शील धारा। लोग कह सकते है कि इसका कारण मुसलमानी प्रभाव था। वास्तव मे बात ऐसी नहीं थी। सस्कृत की दुरूहता ही उसे जन-साधारण से दूर किये देती थी। विद्यापति ने अपनी 'कीर्तिलता' की रचना इसीलिए अवहट्ठ मे की। उन्होने स्पष्ट कहा कि सस्कृत केवल बुधजनो को ही भाती है, प्राकृत (भाषा) रस का मर्म नही पाती, देसी बोली सबको मीठी लगती है, इसलिए 'कीर्तिलता' को मै अवहट्ठ मे कहता हूँ :

सक्कय वाणी बहुअ न भावइ
पाउँअ रस को मम्म न पावइ

देसिल बअना सब जन मिट्ठा
तं तैसन जम्पओ अवहट्ठा।

केवल कबीर और विद्यापति मे ही क्यो, यह धारणा उमसे भी पहले से बद्धमूल होती आ रही थी। **'उत्त बिसेसो कब्बं भाषा जो होउ सो होउ'** वाली उक्ति दसवी-ग्यारहवी सदी मे ही प्रचलित हो चुकी थी। अपनी मृत्यु के कुछ पहले बुद्धदेव ने अपने शिष्यो से कहा था. **'मेरे वचनो का अनुवाद सस्कृत मे मत करना नही तो अपराध के भागी बनोगे। मैं जैसी प्राकृत में उपदेश करता हूँ, ग्रन्थों मे वैसी ही भाषा का व्यवहार करना।'** भाषा के इतिहास मे यह एक नवयुग की ही सूचना थी।

सस्कृत का प्रभाव

किन्तु कई कारणो से बगला पर किसी हद तक सस्कृत का प्रभाव अक्षुण्ण रहा। ईसा की आठवी सदी के आस-पास शाकर मत की विजय से हिन्दुत्व का पुनरुत्थान हुआ और सस्कृत की पुन. प्रतिष्ठा हुई। पुरानी भाषा का बहुत-से अशो मे परिशोधन भी प्रारम्भ हुआ। पुरानी पोथियो मे बहुलता से प्रयुक्त अनेक शब्द आज सहसा लुप्त हो गए है। जैसे, निमल (निर्मल), पखा (पक्ष), विभा (विवाह), दे (देह), काति (कातिक महीना), वगा (वक) आदि। कालान्तर मे बगला और सस्कृत की घनिष्ठता इस सीमा तक भी पहुँच गई कि बगला-कविता को सस्कृत की कविता समझ बैठने का भ्रम भी कोई कर सकता। भारतचन्द्र की इस कविता को देखिये :

जय शिवेश शंकर, वृषध्वजेश्वर, मृगाकशेखर, दिगम्बर।
जय श्मशान नाटक, विषाणवादक हुताशभालक महत्तर।
जय सुरारिनाशन वृषेशवाहन, भुजगभूषण, जटाधर।
जय त्रिलोक कारक, त्रिलोक पालक, त्रिलोकनाशक महेश्वर।[1]

---

१. 'अन्नदा-मगल'।

तत्सम-बाहुल्य का कारण

तत्सम शब्दो की ऐसी बहुलता देखकर ऐसी आशका का होना स्वाभाविक ही है कि आखिर इन आधुनिक भाषाओ को अपभ्रश का विकसित रूप कैसे कहा जाय। खुद अपभ्रश की रचनाओ मे भी सस्कृत के इतने शब्द अपने मूल रूप मे नहीं पाये जाते। हिन्दी मे सूर और तुलसी की भाषा मे भी तत्सम शब्दो की वैसी ही प्रचुरता है। इस पर से श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि चूँकि शाकर मत का प्रचार सस्कृत भाषा के ही द्वारा हुआ, इसलिए जन-साधारण की भाषा मे सस्कृत-शब्दो का प्रवेश होता गया और धीरे-धीरे सस्कृत से ही हिन्दी, बगला, मराठी आदि संस्कृत-बहुल भाषाएँ बनी। राजशेखर ने अपनी 'काव्य-मीमासा' मे ऐसा लिखा है कि गौड या बगाल देश के लोग सस्कृत मे अधिक रुचि रखते थे। विम्स साहब का खयाल है, गौडीय भाषाओ मे (हिन्दी, गुजराती, पजाबी, मराठी, बगला) बगला और मराठी ही सस्कृत के निकटतम है और उनमे अन्य की अपेक्षा तत्सम शब्दो की अधिकता है। इसका कारण उन्होने यह बताया है कि चूँकि पजाब प्रभृति देशो मे मुसलमानी प्रभाव बहुत ज्यादा पडा, इसलिए भाषा का रूप शीघ्रता से बदल गया। दूर किनारे पर होने के कारण बगाल को शान्ति से सस्कृत के प्रभाव मे गठित होने का अवकाश मिला था।

बगला सस्कृत से नही निकली

जो भी हो, आज इस पर विवाद की गुञ्जाइश नही रह गई है कि बगला प्राकृत से नही निकली है। डाक और खना के वचन, परागली महाभारत और महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री द्वारा अन्वेषित, हजार साल की पुरानी बगला मे 'बौद्ध गान ओ दोहा' आदि पुस्तको का अर्थ लगाना भी कठिन है। यह तब की बगला का प्राथमिक रूप है, जब वह प्राकृत की केंचुल छोडकर खडी होने के क्रम मे थी। भाषा के उस स्वरूप को देखकर उसे हम बगला की सज्ञा तो नही दे सकते, पर यह कहना भी

भूल होगी कि वह सीधी सस्कृत से निकलकर आई है। उदाहरण के लिए डाक के वचन की यह भाषा .

बुन्द्वा बुझिया एडिब लुण्ड।
आगल हैले निवारिब तुण्ड॥

हो सकता है प्राप्त प्राकृत रचनाओ से यहाँ की तत्कालीन प्राकृत का सादृश्य न हो, पर प्राकृत के किसी-न-किसी रूप के अन्तर्गत वह आती होगी, ऐसा मानना अप्रासगिक न होगा।

प्राकृत के प्रकार

'साहित्य दर्पण' मे प्राकृत के अठारह भेदो की चर्चा आई है। भरत ने मागधी, आवन्ती, प्राची, शौरसेनी, अर्द्धमागधी, बाल्हीका और दाक्षिणात्या, इन सात प्रकार की प्राकृतो का उल्लेख किया है। 'काव्यादर्श' मे दडी ने गौड़ देश की प्राकृत का स्पष्ट नाम लिया है :

शौरसेनी च गौडी च लाटी चान्या च तादृशी।
याति प्राकृतमित्येवं व्यवहारेषु सन्निधिम्॥

बगला का आदि रूप—मागधी प्राकृत

वररुचि ने मोटा-मोटी दो ही भाषाओ का उल्लेख किया है—शौरसेनी और मागधी। पहली पूर्ववर्ती पश्चिमी हिन्दी का नमूना है और दूसरी बगला, उडिया की पूर्ववर्ती भाषा का। इस प्रकार मागधी प्राकृत मूलत. बगला का प्राचीन रूप ठहरती है। अपभ्रश भाषा के विचार मे महामहोपाध्याय गौरीशकर हीराचन्द जी ओझा ने भी इस मागधी का जिक्र किया है।[1]

शब्द-साम्य

वास्तव मे तो जानी-मानी प्राकृत के किसी रूप से बगला की पूर्वावस्था का पूर्णतया सादृश्य नही है, किन्तु अनेक व्यवहृत शब्द अवश्य मिलते है। 'बगला भाषा ओ साहित्य' मे डॉ॰ दिनेशचन्द्र सेन ने मिलते-

[1] 'मध्यकालीन भारतीय सस्कृति।'

जुलते शब्दो की बहुत बडी तालिका दी है। उनमे से कुछ विशिष्ट शब्दो की चर्चा ही पर्याप्त होगी—

१ *बंगला*—लून (नमक) *संस्कृत रूप*—लवणम्, *प्राकृत*—लोण।

बाहान्न पुरुष यार *लोणेर* व्यापार।
से बेटा आमार काछे करे अहकार।[1]

२ *बगला*—आइ, *संस्कृत*—माता, *प्राकृत*—अत्ता।

आछिल आमार *आता* किछुइ ना जानि
भूतेर डरेते सेइ हिन्दुआनि मानि॥[2]

३. *बंगला*—बोउ (वधू), *संस्कृत*—वधु., *प्राकृत*—बहु

याहार बहु भि दूरे यान्ति।
ताहार निकटे बसे असती॥[3]

४ *बंगला*—दड (दढ), *संस्कृत*—दढ, *प्राकृत*—दट

मने भावे श्रीधर उद्धत द्विजवर,
कोन दिन आमारे किलाय पाछे दढ़।[4]

प्राकृत-क्रिया के बगला रूप

नीचे प्राकृत-क्रिया के कुछ रूपो का नमूना हम दे रहे है, जो आसानी से बगला-क्रिया मे परिवर्तित हो जाते है। यथा—गाव (गाओया), चिण (चेना = चीन्हना), बुज्झ (बोझा = बूझना), जाण (जाना = जानना), होइ (हय = होता है), फुट (फोटा = खिलना, फूटना), पुच्छ (पोछा = पोछना) आदि। इसी प्रकार लभिय का लभिया, शुनिय का शुनिया, करिय का करिया, लइ का लइया बहुत सहज ही बना लिया जाता है। पुरानी बगला मे प्राकृत के बहुत-से शब्द हू-बहू व्यवहृत हुए है—जैसे यान्ति, बलन्ति,

---

१ कवि ककण चडी।

२ विजयगुप्त—'पद्म पुराण'।

३ डाक का वचन।

४ 'चैतन्य भागवत'।

पिबन्ति।

प्रसिद्ध वैष्णवी हैल परम महान्ती।
बड बड वैष्णव तार दर्शनेते *यान्ति*॥
परणाम करिया हंस *बलन्ति* सेइ काले।
हिरण्यकशिपु मारि *पिबन्ति* रुधिर॥

बगला को प्राकृत कहते थे

हिन्दी को जैसे पहले भाषा ही कहते थे, उसी तरह बगला को भी बहुत पहले प्राकृत ही कहा जाता था। अनेक ग्रन्थो के पदो से यह बात प्रमाणित होती है। जैसे .

ताहा अनुसारे लिखि प्राकृत कथने।[1]
प्राकृत प्रबन्धे कहि शुन सर्वलोक।[2]
सप्तदश पर्वकथा सस्कृत छन्द।
मूर्ख बुझिबार कैल पराकृत छन्द।[3]

बगला अनार्य भाषा से नही निकली

कुछ ऐसे भी लोग हुए, जो बगला को न तो सस्कृत से उद्भूत मानते थे और न प्राकृत से ही। उनकी राय मे उसकी उत्पत्ति किसी-न-किसी अनार्य भाषा से हुई है। सस्कृत से उसके शब्दो का बहुत-कुछ सादृश्य जरूर है, परन्तु बहुत पहले सस्कृत से उसका विशेष कोई सम्बन्ध नहीं था। यह बात उसके विभक्ति-चिह्नो और वाक्य-गठन के स्वरूप से प्रमाणित होती है। डॉ० के और डॉ० कॉल्डवेल ने विभक्ति-विवेचन द्वारा यह प्रतिपादित करने की चेष्टा की कि बगला द्रविड भाषा से उत्पन्न हुई। जैसे, हिन्दी का 'को' और बगला का 'के' तातारी अन्त्यवर्ण 'क' से आया है। किन्तु यह मत कुछ समीचीन नहीं जॅचता। मोक्षमूलर ने बगला के बारे मे

---

१ **'कृष्ण कर्णामृत'।**

२ **'चैतन्य मंगल'।**

३ **'गीत-गोविन्द' के एक अनुवाद से।**

यह बताया है कि वह सस्कृत के 'स्व' अर्थ मे 'क' के लिए आया है। गाथा-भाषा मे इसका बहुत अधिक प्रयोग मिलता है। जैसे 'ललित विस्तर' मे :

सुवसन्तके ऋतुवर आगत के राममोप्रिय फुल्लित पादप के।
तवरूप सुरूप सुशोभन के वसवर्त्ति सुलक्षण शोभन के॥

बगला मे अनेक ग्रन्थो और स्थलो मे 'क' हू-बहू सस्कृत और प्राकृत की ही तरह प्रयुक्त हुआ है। जैसे .

भीष्मक भये यत सैन्य जाय पलाइया,
या
शिखण्डिक देखिया पाइबा अनुताप।

देशज शब्द

विभक्ति-विचार से भी यह आदिम असभ्य जाति की भाषा से उद्भूत हुई नही प्रमाणित होती। किन्तु जैसे फारसी-अरबी के बहुत सारे शब्द बगला के निजी-से हो गए है, वैसे ही यह असम्भव नही कि अनार्य भाषा के भी अनेक शब्द इसमे आ मिले हो। बगला के अभिधान मे बहुत-से शब्दो को देशज की सज्ञा दी गई है। 'प्रकृतिवाद' अभिधान मे लगभग २७ हजार शब्द है, जिनमे से कोई आठ सौ शब्दो को देशज कहा गया है। हो सकता है कि उनमे से बहुत-से शब्द अनार्य भाषा के हो, पर ज्यादा-तर तो व सस्कृत या प्राकृत के ही बिगडे रूप प्रतीत होते है।

पुराने शब्दो का नया रूप

बारहवी सदी मे आचार्य हेमचन्द्र ने 'नाममाला' नाम की पुस्तक मे उस समय के प्रचलित शब्दो की एक सूची दी है। वे शब्द या तो आज व्यवहार मे आने वाले बगला शब्दो-जैसे ही है या बहुत ही मामूली हेर-फेर से बगला-शब्द बन जाते है। जैसे : **एक-से शब्द**—झडी (झडी), झाड (झाड), खड (खड), हेला (हेला), बल्ला (बल्ला), रोल (रोल), झला (झला), विहाण (विहान), और **बहुत सामान्य अन्तर वाले शब्द**—बप्प (बाप), झलसिय (झलसानो), तडफडिय (धडफड), धन्धा (धाँधा),

टिप्पी (टिप), पुप्फा (फुपा), ढढल्ल (ढलढले), अल्लट-पल्लट (उलोट-पालट), उथल्ल-पथल्ला (उथल पाथल) पखुडी (पाप्ड़ि), पलोट्टइ (पाल-टानो), गढ (गड), डुम्ब (डोम) आदि ।

अपभ्रश भाषा

जिस पर से आधुनिक भाषाएँ खडी हुई, प्राकृत के उस रूप को अप-भ्रश कहते है। इससे यह न समझे कि ये दो भिन्न भाषाएँ विभिन्न समयो मे बोली जाती थी। अपभ्रश वास्तव मे लोक-प्रचलित भाषा का ही नाम है। पहले इसे आभीरो की भाषा कहा जाता था, आगे चलकर यह लोक-भाषा ही कहलाई। दण्डी ने 'काव्यादर्श' मे आभीर आदि की भाषा को अपभ्रश कहा है। महामहोपाध्याय श्री गौरीशकर हीराचन्द ओझा ने कहा है कि अपभ्रश किसी देश विशेष की भाषा नही, बल्कि मागधी आदि विभिन्न प्राकृत भाषाओ का विकृत रूप एक मिश्रित भाषा है। बगाल मे सेन राजाओ के समय मे किन्ही अशो मे इसकी चर्चा होती थी, पर वैसा राज-सम्मान उसे प्राप्त नही था। साधारण जनता और विशेषकर बौद्ध सिद्धा-चार्य तथा साधको ने इसे खास तौर से अपनाया था। उन दिनो बगला-पद भी ये बौद्ध सिद्धाचार्य ही लिखा करते थे। उनके पहले और किसी ने बगला भाषा मे विशेष कुछ नही लिखा है, ऐसा अनुमान किया जाता है।

सिद्धाचार्यो के पद

महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री के प्रयत्न से नेपाल मे 'चर्य्याचर्य्य विनिश्चय', 'बोधिचर्य्यावतार', 'डाकार्णव' आदि जो ग्रन्थ मिले, वे लगभग दसवी-ग्यारहवी सदी के है। शास्त्री महोदय ने उनमे से सिद्धाचार्यो के गीतो की एक पोथी की भाषा को हजार साल पहले की बगला का रूप बताया है। इस मूल पुस्तक मे ६१ पद थे—अब कोई ४६ पद ही प्राप्त है। प्रत्येक पद मे पदकर्त्ता का नाम है, स्वर सकेत है और उसकी सस्कृत-टीका भी है। इसकी भाषा दुरूह है और बगला के स्वरूप से उसकी खासी दूरी भी दीखती है—किन्तु इन गीतो और जयदेव के पदो मे गीति

कविता की जो धारा थी, वह बंगला-साहित्य मे आज भी अबाध रूप से बह रही है।

आदि रूप का आनुमानिक काल

इस प्रकार यह अनुमान किया जा सकता है कि आठवी से बारहवी सदी तक के अरसे मे बंगला-भाषा का आदि रूप तैयार हो रहा था।

: २ :

आरम्भिक साहित्य की पृष्ठभूमि

तुर्की आक्रमण का प्रभाव

एक प्रकार से पूरी चौदहवी सदी तक बगला मे लिखित साहित्य के किसी भी प्रयास का प्रमाण नही पाया जाता। बारहवी सदी तक के जो तीन ग्रन्थ है—दो 'रामचरित' और 'गीत गोविन्द'—सब-के-सब सस्कृत के है। बारहवी सदी का अन्त होते-न-होते बगाल पर तुर्कों की फौज चढ दौडी। भारत तो आक्रमणकारियो का निशाना जाने कब से बनता रहा था, किन्तु सघर्षो की उस कटुता से दूसरे छोर पर बगाल कतई अछूता रहा। शक-हूणो की करारी चढाई हुई, उत्तर मे तुर्क-पठानो के जुल्मो-सितम हुए, मगर बगाल की शान्ति को आँच नही आई और न ही वे इस कडवे-पन को समझ पाए कि आक्रमण की बला क्या हो सकती है? लिहाजा मुहम्मद-बिन-बख्तियार की खूँखार तलवार जब मगध मे मौत की विभी-षिका, लूट-पाट और खूँरेजी के भयानक दृश्य उपस्थित करती हुई बगाल की सीमा मे जा चमकी तो बे-खबर बगाल से सामान्य प्रतिरोध भी करते नही बना। तुर्क पठानो की मुट्ठी-भर फौज के आगे बगाल ने अनायास ही घुटने टेक दिए। पराजित जाति को जो अजाम भोगने पडते है, बगाल को वे सब नसीब हुए। देश की शान्ति जाती रही, सास्कृतिक उत्थान के सारे मार्ग

बन्द हो गए। विद्या और साहित्य-साधना तो एकबारगी ठप पड गई और इस प्रकार कोई दो-ढाई सौ साल के लिए वह उन्नति की सभी दिशाओ मे बे-तरह पिछड गया।

लोक-भावना की विरासत

बौद्ध-प्रभाव के तिरोधान और हिन्दुत्व के अभ्युत्थान के सन्धि-काल की जो अवधि रही, उस काल की लोक-भावना के कुछ निदर्शन परम्परा की कडी मे गुँथे मिलते है, जो लोक-मुख मे ही प्रचलित रहे और आगे की पीढी को भावना की विरासत मे मिले। ऐसे निदर्शन प्रशसा-गीति, स्तुति-गीति और नीति के वचन है।

जैसे आज के प्रचलित प्रवाद मे—'धान मानते महीपालेर गीत'। मदनपाल के ताम्र-शासन मे इसका जिक्र है कि दूसरे महीपाल की कीर्त्ति-गाथा सर्वत्र गाई जाती थी। 'चैतन्य भागवत' मे इसीका आभास है

योगीपाल भोगीपाल महीपाल गीत।
इहा शुनिते ये लोक आनन्दित॥

बुद्ध-सम्बन्धी साहित्य की कमी

एक बात बडी अजीब-सी और अचरज की लगती है कि जिस बौद्ध-धर्म के प्रभाव की अपार प्रभुता बगाल पर रही, निवृत्ति-मार्ग के उस उन्नायक निर्मल-चरित्र बुद्ध की मामूली वन्दना भी बगला मे नही पाई जाती। जयदेव के 'दशावतार-स्तोत्र' की नकल मे जो-कुछ स्तुतियाँ बनी है, कही-कही नाम-मात्र को उनका उल्लेख-भर मिल जाता है। बगाल मे बौद्ध-धर्म के बड़े-से-बडे विद्वान् हुए, अतीश दीपकर, शीलभद्र, नालदा-बिहार के अध्यापक शात रक्षित आदि। जापान, कोरिया आदि तक बुद्ध के सन्देश पहुँचाने मे बगाल की सतानो ने बडा हाथ बटाया। हुएनसॉग के यात्रा-विवरण से पता चलता है कि सातवी सदी मे उन्हे इन इलाको मे कोई साढे ग्यारह हजार पुरोहित मिले। उस हिसाब से शिष्यो की सख्या का सहज ही अनुमान किया जा सकता है। ऐसा भी कहा जाता है कि जापान मे

कुछ धर्म-ग्रन्थ ऐसे पाये गए है, जो ग्यारहवी सदी की बंगला-लिपि मे लिखे हुए है। जो भी हो, कुछ आन्तरिक प्रभाव के अतिरिक्त बौद्ध-प्रभाव और बुद्ध की अनुगतता के खास चिह्न नही पाये जाते।

बौद्ध-प्रभाव की कमी के कारण

बंगाल मे पिछले दिनो निम्न श्रेणी के लोगो मे 'धर्म-पूजा' की जो प्रथा चल पडी थी, बहुत-से लोग उसे बौद्धो की देन बताते है। धर्म-पूजा के प्रधान पण्डा रमाइ पंडित के 'शून्य पुराण' मे शून्यवाद का कारण बौद्ध-प्रभाव ही है। ऐसे और भी कुछ परिचय उस प्रभाव का मिलता है। सच तो यह है कि ब्राह्मण धर्म ने इस प्रबलता से सिर उठाया और वह बौद्ध-प्रभाव को मटियामेट कर देने पर इस बुरी तरह तुल गया कि उसका ऐसा परिणाम हुआ, तो ताज्जुब नही।

बौद्ध-विरोधिता

वह विरोधिता कितनी प्रखर थी, यह इन कुछ बातो से ही जानी जा सकती है कि दश-अवतार मे बुद्ध का नाम शामिल किये जाने के कारण एक लेखक ने विष्णु-विग्रह की पूजा का ही निषेध कर दिया, इसलिए कि बुद्ध बनकर विष्णु वेद-निन्दक बन बैठे। मनु ने **'अंग-बंग कलिंगेषु'** आदि श्लोक द्वारा बंगालवासियो से हिन्दुओ का सम्पर्क निषिद्ध बताया है, 'ऐतरेय आरण्यक' के भाष्यकार आनन्दतीर्थ ने बंगवासियो को पिशाच और राक्षस तक कह दिया है। तेरहवी सदी मे कृष्ण पण्डित ने अपनी 'प्राकृत-चन्द्रिका' मे बौद्ध-प्रभावित बंगला को पैशाची प्राकृत की संज्ञा दे दी है।

धर्म ठाकुर की पूजा

धर्म ठाकुर की पूजा बंगाल मे बहुत पहले से चली आती है। इस पूजा-पद्धति मे बौद्ध-धर्म का स्पष्ट आभास मिलता है। महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने धर्म-पूजा को बौद्ध-धर्म की ही विकृति और रूपान्तर कहा है। बंगाल मे बौद्धो का महायान धर्म समय से तान्त्रिक सहज यान मे बदल

गया था। उसी तान्त्रिक सहज यान, नाथ-पन्थी शैव योगियो के धर्म मत और कुछ अनार्य विश्वासो के मेल से इसका उद्भव हुआ था। बहुत पहले से ही इनका अपना सृष्टि-तत्त्व था और इनकी पौराणिक कहानियो का देश मे प्रचलन था। इस पूजा की प्रथा पहले समाज के निम्न वर्ग के लोगो तक ही सीमित थी, आगे चलकर पन्द्रहवी-सोलहवी सदी तक ब्राह्मणो मे ही क्या, सारे उत्तर बगाल मे यह चल निकली। धर्म ठाकुर की कोई प्रतिमा नही बनती, चौडे आकार का एक पत्थर ही उनके स्वरूप का प्रतीक है। १७वी सदी आते-आते धर्म ठाकुर के स्वरूप मे विष्णु और शिव की मूर्ति भी एकीभूत होने लगी और धीरे-धीरे यह पूजा ब्राह्मण-धर्म का भी अग बन बैठी।

धर्म-पूजा का साहित्य

धर्म-पूजा के बहुतेरे ग्रन्थ मिलते हैं, जो दो भागो मे बाँटे जा सकते है। एक मे तो पूजा-सम्बन्धी विधियाँ और तन्त्र-मन्त्र हैं, इन्हे धर्म-पूजको का 'कडचा' या 'धर्म-पुराण' कहते है। इनका वैसा कोई साहित्यिक मूल्य नही है। जो ग्रन्थ दूसरी श्रेणी मे आते है, वे धर्म-मगल-काव्य है। उनमे धर्म ठाकुर की गुण-गाथा गाई गई है एव उनके माहात्म्य-सम्बन्धी लौकिक और पौराणिक कहानियाँ है। यद्यपि इनमे उपकथा और आख्यायिकाएँ पिरोई गई है, फिर भी उनमे एक काव्योचित ऐक्य है और इसलिए खेला-राम ने ऐसे धर्म-मगल-काव्यो को गौडीय काव्य कहा है।

रमाइ पंडित का 'शून्य पुराण'

इन ग्रन्थो मे जो सबसे ज़्यादा मशहूर है, वह रमाइ पडित-कृत 'शून्य पुराण' है। इसमे ५१ अध्याय है, जिनमे से ५ तो सृष्टि-तत्त्व-सम्बन्धी है। और वह सृष्टि-तत्त्व महायान-सम्प्रदाय के मत से ही मिलता है। बाकी अध्यायों मे विशेषतया पूजा-विधान है और वे विधान बडे ही विचित्र-से है। विषय-वस्तु की विचित्रता और अद्भुत शब्दावली के कारण बहुतेरे लोग इस पुस्तक को बहुत प्राचीन कहते है। धनराम के 'धर्म मगल' मे

रमाइ पडित को राजा धर्मपाल द्वितीय के समय का बताया गया है। कहते है, धर्मपाल की साली रजावती ने रमाइ पडित से धार्मिक शिक्षा पाई थी।

'शून्य पुराण' का समय

श्री नगेन्द्रनाथ बसु (जिन्होंने 'शून्य पुराण' को प्रकाशित कराया है) भी रमाइ पडित का समय ग्यारहवी सदी मानते हैं। बहुत सम्भव है, उसमे कुछ अश बहुत पुराने हो, पर भाषा को देखते हुए यह नही प्रतीत होता कि वह पन्द्रहवी-सोलहवी सदी से ज़्यादा पुरानी है। उसमे भिन्न-भिन्न समय और भिन्न-भिन्न लोगो के लिखे हुए अनेक छन्द सकलित है। जैसे 'निरजन की उष्मा' उसका एक बडा ही मनोरजक अश है, जिसमे यह दिखाया गया है कि देवताओं ने किस प्रकार मुसलमानी वेश धारण किया। उसकी कुछ पक्तियाँ .

धर्म हैला जबनरूपी माथाएते कालो टुपि
हाते सोमें त्रिरुच कामान।
चापिया उत्तम हय त्रिभुवने लागे भय
खोदाय बलिया एक नाम॥
निरंजन निराकार हैला भेस्त अवतार
मुखेते बलेत दम्बदार।
यतेक देवतागण सभे हैया एकमन
आनन्देते परिल इजार॥
ब्रह्म हैल मोहाम्मद विष्णु हैला पेकाम्बर
आदम्फ हैल सूल पानि।
गणेश हइया गाजी कार्त्तिक हैल काजि
फकिर हइल्या जत मुनि॥
तेजिया आपन भेक नारद हइला सेक
पुरन्दर हइल मलना।
चन्द्र सूर्य आदि देवे पदातिक हय्या सेबे

सबे मिलि बाजाय बाजना ।
आपुनि चडिका देवी तिहु हल्या हायाबिबि
पद्मावती हल्या बिबि नूर ।

थोडे मे, निराकार निरजन बहिश्त के अवतार हुए और जितने भी देवगण थे, खुशी खुशी उन्होने पाजामा अपनाया । ब्रह्मा मुहम्मद, विष्णु पैगम्बर और स्वय महादेव बाबा आदम बन बैठे । गणेश जी गाजी हुए, कार्तिक जी काजी और मुनिगण फकीर । बाबा नारद ने शेख साहब का रूप लिया और इन्द्र भगवान् मौलाना हो गए । चाँद-सूरज सब बजनियाँ बन गए । चण्डिका देवी जो है, सो हवा बीवी हो गई और पद्मावती बीवी नूर बन बैठी ।

'अनिल पुराण' का अश

पता चला है, यह कविता महदेव चक्रवत्ती के 'अनिल पुराण' मे पाई गई है, जो १८वी सदी की रचना है । लिहाजा 'शून्य पुराण' कई समय के कई लोगो की रचनाओ का सकलन ही ठहरता है । यो उसके कुछ हिस्से पुराने शायद हो । 'धर्म मगल'-सम्बन्धी और भी जो काव्य मिले है, सब सत्रहवी-अठारहवी सदी के ही है ।

अन्यान्य धर्ममगल-काव्य

धर्ममगल-काव्यो मे मयूर भट्ट को इस विषय का आदिकवि कहा गया है, मगर उनकी कृति का नामो-निशान नही मिलता । खेलाराम का 'धर्ममगल' भी बहुत प्राचीन माना जाता है, पर उनका काव्य भी नही पाया जाता है । वीरभूमि के श्याम पण्डित का काव्य सत्रहवी सदी के अन्तिम भाग का है और रूपराम की रचना भी उसी सदी की होगी । रामदास आदक और सीताराम के काव्य अठारहवी सदी के है । लगता है, कि 'शून्य पुराण' की रचनाएँ इसी परम्परा की है और उसके पुराने अशो मे जोड दी गई है ।

ग्राम-गीत और गाथा

'मयनामतीर गान' और 'गोरक्ष-विजय' नाम के ग्राम-गीतों की परम्परा भी बड़ी पुरानी है। इस नाम से अनेक प्रकार की पोथियाँ प्राप्त हैं, जिनमें अनेक पाठान्तर होते हुए भी यह अनुमान किया जा सकता है कि इनका मूल उद्गम किसी एक ही पुरानी गाथा से है। ये गीत ढाका, रंगपुर आदि क्षेत्रों में नाना रूपों में पाये जाते हैं और ऐसा विश्वास है कि बारहवीं सदी के आस-पास से इसकी शुरूआत हुई। जार्ज ग्रियर्सन साहब ने सन् १८७४ में 'माणिक चाँदेर गान' नाम की ग्राम-गाथा प्रकाशित की थी और उन्होंने माणिक चाँद को १४वीं सदी का माना था, बाद में उनका काल उन्होंने ग्यारहवीं सदी माना। गोरखनाथ उनके समसामयिक थे, ऐसा कहा जाता है। डॉ० भण्डारकर ने उन्हें बारहवीं सदी का माना है और राहुल सांकृत्यायन ने विक्रम की दसवीं सदी का।

भरथरी और गोपीचन्द

इन गीतों में भरथरी और गोपीचन्द के गीतों की एक अजीब खिल्त-मिल्त हो गई है। इतिहास के उन अँधेरे पन्नों को टटोलना उतना लाभ-जनक शायद न हो। इतना ही मान लेना पर्याप्त होगा कि इन गाथाओं का करुणा-स्रोत पुराना जरूर है और उसने बंगाल के जन-मन को एक समय खूब ही आलोडित किया है। गीतों की करुणा जी छूती है।

स्वाभाविक काव्य-सौष्ठव

इन गीतियों की मार्मिकता कहीं-कहीं तो बड़ी ही बारीकी का परिचय देती है। गोपीचन्द सन्यास लेने को है, पत्नी अदूना कहती है

> ना जाइयो, ना जाइयो राजा दूर देशान्तर।
> कारे लागिया बान्धिलाम सीतल मंदिर घर॥
> निन्देर स्वपने राजा हब दरसन।
> पालंगे फेलाइब हस्त नाइ प्रानेर धन॥

दमगिरिर माझो बइन रबे स्यामि लइबे कोले।
आमि नारि रोदन कोरिबो खालि घर मंदिरे ॥
आमाके सगे करि लइया जाओ ।
जीयव जीवन धन आमि कन्या सगे गेले ।
रोधिया दिमु अन्न क्षुधार काले ।
पिपासार काले दिमु पानि ।

यानी राजा, दूर देशान्तर मत जाओ, मत जाओ। मैने यह शीतल घर आखिर किसके लिए बाँधा? अब तो तुम्हारे स्वप्न मे दर्शन होगे। जब मे पलग पर हाथ फैलाऊँगी तो पाऊँगी कि प्राण-धन नही है। सबकी माँ-बहने अपने-अपने पति के गले लगी रहेगी, एक मै अभागिन नारी अकेली घर मे रोऊँगी। राजा, मुझे साथ ले चलो, मै भी जाऊँगी। भूख लगने पर मे तुम्हे पकाकर खिलाऊँगी, प्यास लगने पर पानी दूँगी।

गोपीचन्द ने जगल की भयानक कठिनाइयाँ बताई कि उसके जाने का हौसला पस्त हो जाय। मगर वह बोली—अजी, ये भी पतियाने की बाते है भला, स्वामी के साथ स्त्री जायगी और उसे बाघ मार खायगा? ये तो तुम्हारी छोड भागने की चाले है। खा ले मुझे बाघ, कोई परवाह नही। तुम बरगद का पेड होना, मै लता हूँगी। उन रक्तिम चरणो को मै लपेट लूँगी, जाओ तुम कैसे जाते हो। जब मै मैके थी, तभी क्यो न सन्यासी हो गए थे?

के कय एगुलो कथा के आर पइताय।
पुरुसेर सगे गेले कि स्त्री के बाघे धरे खाय ॥
ओगुलो कथा झुटमुट पालाबार उपाय।
खाय ना केने बनेर बाघ ताक नाइ डर।
तुमि हबू बटवृक्ष आमि तोमार लता।
राँगा चरण बेडिया लम् पालाइया जाबू कोथा।
जखन आछिनू आमि माँ बापेर घरे।
तखनि केन धर्म्मि राजा ना गेलेन सन्यासी हइये।

मैनामती और गोरक्ष-विजय

बडी सादगी है, बडी सीधी और चुभती-सी बात। भाषा और छन्द मे भी कही बनावट नही है। जो भी हो, इस सम्बन्ध की जितनी भी पुस्तके पाई गई है, उनमे से कोई भी दो-ढाई सौ साल से ज़्यादा पुरानी नही है, गाथा अवश्य पुरानी है। 'मैनामती' और 'गोरक्ष-विजय' के गीत एक ही युग के है और एक ही सम्प्रदाय के लोगो के रचे हुए है। दोनो की पृथक् पोथियाँ होते हुए भी केवल विषय-वस्तु का ही साम्य नही है, दोनो की पक्तियाँ भी बे-तरह टकरा जाती हैं। जैसे :

कारो पोखरिर पानि केह नाहिं खाय।
मणि माणिक्य तारा रौद्रेते शुखाय॥

यह 'गोरक्ष-विजय' मे कदलीपत्तन की खुशहाल प्रजा की बात है। किसी के पोखर का पानी कोई नही पीता—मणि-माणिक्य वे धूप मे सुखाते है। इतनी समृद्धि और ऐसी बे-फिक्री! माणिक चन्द्र की प्रजा की बाबत 'मैनामती के गान' मे ठीक यही लिखा है :

हीरा मण माणिक्य तलिते शुखाइत।
काहार पुष्करिणीर चल केह ना खाइत॥

'गोरक्ष-विजय' मे लिखा है कि चिराग गुल हो जाय तो नेह क्या करेगा, खेत मे से पानी निकल जाय तो मेड बाँधने का क्या नतीजा? जड अगर कट जाय, तो गुरुजी, गाछ की जिन्दगी नही रहती। भला पानी बिना मछली के जीने की बात भी आपने सुनी है?

प्रदीप निबिले गुरु कि करिबे तेले।
आइल बाँधिया किवा फल जल आगे गेले।
मूल काटा गेले गुरु ना जीयये गाछ।
बिनि जले कथात शुनिछ जीये माछ।

जो बात इसमे गुरु के प्रति कही गई है, वही बात मैनामती के गान मे रानी ने अपने पुत्र गोबिन्दचन्द्र से कही है। शब्द-शब्द का मेल। केवल 'गुरु' के बदले 'बापू', 'आगे' के बदले 'छुटि', 'मूल' के बदले 'शिकड' और

'माहु' के बदले 'माछ'—इतना ही फर्क है।

प्रदीप निविले बापू कि करिबे तेले।
आइल बाँधिले किवा फल जल छुटि गेले॥
शिकड काटिले बापु आपनि पडे गाछ।
बिनि जले कथाय त शुखनाय जाय माछ॥

इन गीतों मे ग्रामीण जीवन का सरल बॉकपन, हृदय की निष्कपट भावना पाण्डित्य के आडम्बर से रहित सादे शब्दो मे उतर-उभर आये है। किन्तु इनकी कीमत इसीसे ऑकी जा सकती है कि इन्हीमे आये हुए प्रवाद, मुहावरे आदि मे आगे का साहित्य सम्पन्न हुआ है।

व्रत-कथा और रूप-कथा

इन ग्राम-गाथाओ की तरह कुछ प्राचीन व्रत-कथा और रूप-कथाऍ भी है, जो परम्परा से चली आ रही है और बहुत पुरानी है। लोक-मुख मे सदियो से आती हुई उन कथाओ की भाषा आज बहुत परिवर्तित जरूर हो गई है। फिर भी कई कारणो से उनकी प्राचीनता पर आस्था होती है। उनमे जिन देवी-देवताओ के जिक्र आये हैं, वे राम-लक्ष्मण या इन्द्र चन्द्र नहीं, बल्कि ग्राम्य-देवता हैं, इन्हीकी पूजा-पाट और भोग-राग की विधि चली आती है। ऐसी व्रत-पूजाओ मे थूया, मादालि, वाता-काता के नाम लिये जा सकते है। भाषा मे भी पुरानापन बहुत हद तक कायम है। जैसे :

थूया पूजि थुटालि। अघन मासेर भँयालि॥
टेंकी पडन्त। गाय बियन्त।
अकाले भातन्ति। अकाले पूतन्ति।

गाथा-कथा की प्राचीनता

इनकी प्राचीनता का विश्वसनीय प्रमाण एक कहानी है कि इनका प्रचार समान रूप से मुसलमानो मे भी है। हिन्दुओ के राम-लक्ष्मण या अन्य देवी-देवता उनके सस्कार मे नही पच पाए, किन्तु इनके साथ उनका सस्कार जैसे घुला-मिला है, इनसे उनका जैसे एक निजत्व है।

गीति-कथाओ के मुस्लिम लेखक

इसका कारण शायद यह हो कि मुसलमान होने के पहले बगाल के मुसलमान हिन्दू या बौद्ध ही थे। तेरहवी या चौदहवी सदी मे उन्होने इस्लाम कबूल किया। फलस्वरूप उसके पहले ये चीजे उनकी नितान्त निजी थी और रक्त-मज्जा और भावना मे समा गई थी। इसीलिए मुसलमान होने के बावजूद उनसे उनका वही सम्बन्ध रह गया। कचनमाला, शख-माला, पुष्पमाला, मालचमाला आदि रूप-कथाओ के साथ उनके हृदय का एक योग रह ही गया और आज भी उनमे वे हिन्दुओ के समान ही प्रच-लित रह गई है। उनमे को बहुत-सी नारी-धर्म की बाते हिन्दू-रमणी की तरह मुस्लिम औरते भी मानती है। ऐसे मुसलमान भी है, जो 'लक्ष्मी की पॉचाली' गाकर अपनी जीविका कमाते है। इन गीति-कथाओ को आज के अनेक मुस्लिम लेखको ने भी लिखा है। मुस्लिमो की वैसी कुछ पोथियो के नाम है—'मधुमालार केच्छा', 'मालचमालार केच्छा', 'सती बीवीर केच्छा' (केच्छा यानी किस्सा), 'शीत बसतेर पु थि' 'सापेर मन्तर', 'मालती कुसुम माला' आदि-आदि।

मतर-जतर पर पुराने समय से ही मुसलमानो का आधिपत्य-सा रहा है और उन मन्त्रो मे भी हिन्दू देवी-देवताओ के नाम आते है। फिर भी वे इसकी सिद्धि करते हैं। वैसे एक मतर का नमूना .

हस्त सारम् गला सारम् आर सारम् मुख।
पेट पीठ चरण सारम् आर सारम् बुक॥
पेट पिठ चरण साति मनसार बरे।
लक्ष-लक्ष बाण अमुकेर कि करिते पारे॥
कॉगरेर कामिक्षि देवी दिया गेल वर।
बालिर बिन्द राजा बले अमुक हैला अमर॥

रूप-कथाओ की विशेषता

इन रूप-कथाओ मे नारी-चरित्र की सरल-पावन दिशा का सुष्ठु सकेत

है, उनके हृदय का अमृत भण्डार, चरित्र-बल, लज्जा, त्याग और तपस्या का जीता-जागता स्वरूप है। डॉ० दिनेशचन्द्र सेन ने उन रूप-कथाओं के लिए लिखा है . **'ये शिशुओं के आमोद-उत्स है, युवको की प्रेम-पिपासा के अमृत है और वृद्धो के शास्त्र है।'** इनमे प्रवाद-वचनो की तो ऐसी भरमार है, जिनसे साहित्य को एक शक्ति और समृद्धि मिली है। केवल 'शखमाला' की कहानी मे ही कोई २०३ मूल्यवान चरण है। कुछेक उदाहरण .

धन रत्न कडि । ना बियालेय बुडि ।

यानी धन, रत्न और कौडी (रुपये-पैसे के अर्थ मे) न बढने से बूढी हो जाती है।

चोखेर मणि । दुःखेर खनि ।

आँखो का तारा दुःख की खान होता है।

था कि अथा । बोलते पारे पद्मे र पाता ।

पानी की थाह है या अथाह, यह तो कमल का पत्ता ही कह सकता है।

दशेर कथा । वेदेर पाता ।

दस की बात, वेद-वाक्य जानिये।

तुमि कार झियारी कार बौ । कार छातेर भरा भौ ।

तुम किसकी घरनी हो, किसकी बहू, किस छत्ते की तुम भरी शहद हो।

कत स्वपन हासे । कत स्वपन भासे ।

कितने सपने हँसते है और कितने तिर-तिर आते है।

एक जे आगुनेर शिख । सप्तदिक ।

आग की एक तो लपट, सातो दिशाओ मे उजाला।

डाक और खना के वचन

डाक और खना के वचन सम्भवत. इनसे भी पुराने है। उनमे वास्तविक बगला-भाषा की प्राक्-प्रचेष्टा के निदर्शन है। सदियो से लोक-मुख मे मँजते-मँजते आज वे बहुत अशो मे सरल-सहज हो आए है। प्रचलित

चाहे वे जिन नामो से ही क्यो न हो, वास्तव मे जातीय सम्पत्ति हैं और उनकी रचना मे जानते-अजानते हर व्यक्ति का सहयोग है। बीरबल, गोनूझा, गोपाल भॉड, इनके नाम से जो चुटकुले आज लोगो मे फैल गए है, वे सारे उन्हीके रचे हुए नही है। समय-समय पर दूसरे-दूसरे लोग भी वैसी चीजे रचकर उनमे जोड देते रहे है। डाक और खना के वचन भी ठीक वैसे ही है। उनमे कवित्व नही है, शब्द-सौष्ठव नही है, इसलिए उनका साहित्यिक मूल्य नही भी माना जा सकता, पर सादगी मे, सक्षेप मे जो सत्य सामने आता है, वह प्रत्येक व्यक्ति को जॅच जाता है। यही कारण है कि काल की इस लम्बी कडी मे वे आज भी गुंथे चमकते है। डाक के वचन मे ज्योतिष और क्षेत्र-तत्त्व की बाते भरी पडी है और मानव-चरित्र की व्याख्या भी है। लगता है, उसकी व्यावहारिक मॅजाई अपेक्षाकृत कम हुई है—इसलिए उसकी भाषा का वैसा सस्कार न होकर कुछ पुरानापन उसमे रह गया है, किन्तु खना की बाते जैसे आज की ही हो, क्या विषय मे और क्या भाषा मे।

डाक कौन थे ?

डाक को बगाल का सुकरात कहा गया है, कहा जाता है, जन्मते ही डाक ने अपनी मॉ को पुकारा था। इसलिए उसका नाम डाक पडा। 'डाक' के मानी बगला मे पुकार है। कोई-कोई कहते हैं, डाक का जन्म आसाम के 'लोहि डॉगरा' मे हुआ था, जा आज भी 'लोहू' नाम से मौजूद है। किन्तु आसाम का डाक, पता चला है, कुम्हार था और यह गोप। आसाम, उडीसा, बगाल, बिहार तमाम मे डाक के वचन कहे-सुने जाते है। इससे यह तो विश्वसनीय नही लगता कि वह व्यक्ति-विशेष का ही दान है। बौद्ध-युग मे सिद्ध होकर कुछेक पद बना लेने वाली को डाकिनी कहा जाता था, यह डाक शायद उसीका पुरुषवाची शब्द हो। नाम-गाम की तरह उसके समय के विषय मे भी निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता। भाषा को देखते हुए इतना ही अनुमान सम्भव है कि वे वचन तब के है, जब बगला बनने के क्रम मे थी।

नारी-लक्षण

अच्छी और बुरी औरत के लक्षण डाक ने बहुत सुन्दर दिये है। वे कहते है ·

सुशीला, शुद्ध वशे उत्पत्ति।
मिठ बोल, स्वामि ते भकति॥
रौद्र काँटा कुटाय राँधे।
खड काठ वर्षा के बाँधे॥
काँखे कलसी पानी के जाय।
हेटमुण्डे का कहो ना चाय।
जेन जाय तेन आइसे।
डाक बले गृहिणि सेइसे।

यानी सुशीला, अच्छे कुल की, मिठबोली और पति मे भक्ति रखने वाली होती है। गरमी के दिनो काँटा-कुटाय यानी झाड-पात से रसोई बना लेती है और बरसात के लिए लकडी पुआल जुगाकर रखती है। कमर पर मटकी लिये पानी के लिए जाते वक्त नजर झुकाए चलती है, उझककर किसीको झाँकती नही। गई नही कि वापिस आती है। डाक का कहना है, गृहिणी वह है।

अब जरा कुगृहिणी के भी लच्छन सुन लीजिये .

घरे आखा, बाइरे राँधे।
अल्प केस फुलाइया बाँधे॥
धन-धन चाय उलटि घाड।
डाक बले ए नारि घर उजाड॥

अर्थात् चूल्हा तो घर रहा, रसोई बाहर बनाती है। थोडे-से बाल है, फुला-फुलाकर सँवारती है। बार-बार गरदन घुमाकर ताकती है। ऐसी जो औरत हुई, तो घर-उजाड ही जानिये।

नियड पोखरि दूरे जाय।
पथिक दखिये आउडे चाय॥

पर सभाषे बाटे थिके।
डाक बले ए नारि घरे ना टिके।

अर्थात् पोखर पास रहने पर भी पानी को दूर जाती है। बटोही को आडी चितवन से देखती है, बाहर खडी-खडी बिरानो से बतराती है, डाक कहता है, ऐसी औरत घर मे कभी नही टिक सकती।

खना और उसके वचन

इनके अलावा नीति और उपदेश के अनेक अकाट्य वचन है। 'खना' के वचन से तो घाघ-भडरी की याद आ जाती है। गृहस्थी और खेती के सम्बन्ध की उसकी कहावते हर जबान पर लगी है। 'खना' के बारे मे बहुत तरह की कथाएँ कही जाती है, जो कि विश्वासयोग्य नही है। वह बराह-मिहिर की स्त्री कही जाती है, जो कि ठीक शायद नही है। उसके स्त्री होने मे भी सदेह ही हे। हो सकता है, क्षण की बाते कहने के कारण लोगो ने उसे क्षणा (खना) कहना शुरू कर दिया हो। जो भी हो, खना की बाते बडी मूल्यवान और लोकप्रिय है। जैसे खेती के बारे मे .

खना डेके बोले जान।
रोदे धान छायाय पान॥
दिने रोद राते जल।
ताते बाडे धानेर बल॥

खना का कहना है, धूप मे धान होता है, छाया मे पान। दिन मे धूप और रात मे पानी हो, तो धान जोरदार होता है।

सतति-निर्णय—

जय मासेर गर्भ नारीर नामे ज अक्षर।
जय जन शुने पक्ष दिये एक कर॥
साते हरि चन्द्र नेम बाण यदि रय।
एते पुत्र परे कन्या जानिह निश्चय॥
हरिते सकल अक यदि रहे सात।
बराहमिहिरे बले हय गर्भपात॥

जितने मास का गर्भ हो, उसकी, गर्भिणी के नाम और सुनने वालो के नाम की अक्षर-सख्या के साथ पन्द्रह (पत्र) जोड दो, जोड को सात से भाग दो, इस तरह से अक जोडा बचे तो जानो लडकी, अयुग्म बचे तो लडका और कुछ न बचे तो समझो कि गर्भ-पात होगा।

वर्षा-फल—

यदि बरे आगने ।
राजा जान माँगने ॥
यदि वरषे पौषे ।
कडि हय तुषे ।
यदि वरषे माघेर शेष ।
धन्य राजा पुण्य देश ॥

यानी अगहन (अगने) मे बरसे तो राजा को भी भीख की नौबत आ जाय। यदि कही पूस मे पानी पडे तो राख (तुप) मे भी पैसे होगे। और माघ का अत कही बरस जाय तो समझो धन्य है वहाँ का राजा, पुण्य है वह भूमि।

: ३ :

आदिकालीन साहित्य की रूपरेखा

सामाजिक निष्क्रियता

अपने आदिकाल मे बगला भाषा और उसका साहित्य क्या और कैसा था, इसकी चर्चा हम पिछले अध्यायो मे कर आए हैं। हिन्दू धर्म की जो जागृति नये सिरे से हुई, उसकी चेतना बडी जोरदार थी। उसकी वजह से बौद्ध धर्म की बुनियाद तो यहाँ से जरूर उखड गई, पर बौद्ध-भाव की जो छाप हिन्दू-हृदय में गाढी हो गई थी, उसके अहिंसा-तत्त्व से सामाजिक जीवन की नस-नस मे विरक्ति और उदासीनता का एक तीखा जहर फैल गया था। उससे जो एक सार्वजनिक निष्क्रियता आ गई थी, उसका एक बहुत ही बुरा नतीजा बगाल को भोगना पडा। तुर्कों की जो थोडी-सी फौज बगाल पर पिल पडी, भले लडके की तरह तनिक भी विरोध या चीं-चपड किये ही बगाल ने उसकी अधीनता कुबूल कर ली। इसका परिणाम यह हुआ कि एक अजीब भीतरी अव्यवस्था फैल गई। शिल्प-साहित्य की उन्नति के लिए जो सुख-शान्ति जातीय जीवन के लिए जरूरी है, उसकी बू-बास भी न रही। और इसीलिए तुर्कों की चढाई के बाद पूरे दो सौ वर्षों तक—तेरहवी-चौदहवी सदी—बगाल की साहित्य-साधना की सक्रिय चेष्टा की कोई भी उल्लेख-योग्य सामग्री नही मिलती।

कुछ पल्ली-गीतिकाएँ

'श्यामराय', 'ऑवार्बंधू' और 'धोपार पाठ' आदि जो कुछेक पल्ली-गीतिकाएँ पाई गई है, कई ऐतिहासिको का कहना है, ये उसी अरसे की रचनाएँ है। हो सकता है, लोक-कथा-परम्परा की कडी मे ही ये भी हो, पर दो सदियो की अवधि को देखते हुए उस साधना की कोई कीमत नही होती। वास्तव मे तो पन्द्रहवी सदी से ही बगला-साहित्य-साधना का एक बहुमुखी स्रोत विकासोन्मुख होता है, जो आज भी एक प्रकार से अविच्छिन्न बहता आ रहा है।

साहित्य का युग-विभाजन

बगला-साहित्य को अगर हम युगो मे बाँटकर देखना चाहे, तो गति और रूप को देखते हुए मोटा-मोटी उसे पाँच भागो मे बाँटा जा सकता है— आदि काल, आरम्भिक विकास-काल, विकास-काल, आधुनिक काल और अत्याधुनिक काल। भाव और रचनागत रूप-वैशिष्ट्य के मुताबिक और अन्तर्युगो का विभाजन भी सम्भव है, पर उस उलझन मे जाने की जरूरत नही। अवधि के अनुसार ऊपर लिखे युगो की सीमाएँ सुविधा के लिए इस प्रकार बाँटी जा सकती है—

आदि काल : नवी से बारहवी सदी तक।

आरम्भिक विकास-काल : तरहवी से पन्द्रहवी सदी यानी चैतन्य-पूर्वकाल।

विकास-काल . सोलहवी से आधी अठारहवी सदी—चैतन्योत्तर काल।

आधुनिक काल : आधी अठारहवी सदी से रवीन्द्रनाथ तक।

अत्याधुनिक काल वर्तमान, रवीन्द्रोत्तर-काल।

मुस्लिम दरबार द्वारा भाषा का पोषण

तुर्को की जीत के बाद एक लम्बे अरसे तक साहित्य-सर्जना के स्रोत मे भाटा-सा पड गया था। मुस्लिम-आधिपत्य-जनित उसके अनेक कारण होगे,

यह नहीं था कि जान-सुनकर मुसलमानों की ओर से उसके लिए कोई रोक-थाम थी। बल्कि इस ओर बंगाल देश पर मुसलमानों का एक ऐसा ऋण है, जो कभी चुकाया नहीं जा सकता। बंगला-साहित्य पर जिस दिन घोर संकट और आपत्ति की सूचना हुई थी, उस दिन मुसलमानी दरबार ही में उसे पनाह मिली और उसका सौभाग्य फूला-फला। ऐसा न होता, तो बंगाल शास्त्र और संस्कृत के ही दो छोरों पर बँधा रहता, विकासोन्मुख साहित्य सिर धुनकर दम तोड़ देता। इस महान् दुर्भाग्य से बचाकर बंगला को अपना अलग अस्तित्व कायम करने का मौका बहुत हद तक मुसलमानों ने ही दिया।

बंगला-विरोधी वातावरण

बंगला के लिए सौभाग्य का एक दिन वह आया था, जब बौद्धों ने उसे धर्म-प्रचार के लिए माध्यम के रूप में अपनाया था। किन्तु उसे पनपने का वह सुयोग ज्यादा दिनों तक नहीं मिल सका। हिन्दुत्व का फिर से जो जागरण हुआ, उसमें सहज भाषा के लिए विषैली विरोधिता भी जागी। बौद्धजन तो बे-तरह पीड़ित किये ही गए, बंगला भी उस धार्मिक कट्टरता का शिकार हो गई। नये धर्म के साथ फिर से संस्कृत की दुहाई दी जाने लगी। जो धर्म-ग्रन्थों को बंग-भाषा द्वारा लोगों में ला रहे थे, उनकी घनघोर निन्दा ही नहीं हुई, बल्कि वे सताये भी गए। उनके खिलाफ श्लोकों की रचना की गई, पद्य बनाकर प्रचारित किये गए। 'रामायण' और 'महाभारत'-जैसे ग्रन्थों के बंगानुवाद करने वाले कृत्तिवास, काशीदास आदि को सर्वनाशी कहा गया .

कृत्तिवेसे काशीदेसे आर बामुन घेंसे।
एइ तिन सर्वनेशे ॥

भाषा में रामायण, पुराणादि सुनने वालों को सीधा रौरव भेज दिया गया

अष्टादश पुराणानि रामस्य चरितानि च।
भाषायां मानवः श्रुत्वा रौरवं नरकं व्रजेत् ॥

भाषा-विरोधिता के कारण

ये बातें महज बातों तक ही महदूद होती तो एक बात थी भाषा के हिमायतियों की दुर्गत बनाने में भी कोई कसर बाकी नहीं रखी गई। प्रसिद्ध वैष्णव कवि चण्डीदास के पीछे समाज हाथ धोकर पड गया, उनकी निन्दा रटाई गई, उन्हें जाति से निकाला गया और जाने क्या-क्या किया गया। चैतन्य महाप्रभु के शिष्यों पर भी ऐसी ही बुरी बीती। इस विरोध का एक और भी पहलू था। हिन्दुत्व के इस पुनर्जागरण के साथ देश में नई चेतना की वह हवा भी बहकर आई, जिसने नेतृत्व की बागडोर पर ब्राह्मणों का ही एकाधिपत्य नहीं रहने दिया बल्कि ब्राह्मणेतर लोग भी आगे आये। कबीर, रैदास, दादू, तुकाराम की तरह बगाल के साहित्य-साधकों में वैसों की बहुत बडी जमात हो गई। चैतन्य के अनुयायियों में भी वैसे लोगों की सख्या खासी थी। इन कारणों से वह कट्टरता और भी उग्र हो आई थी।

इलियासशाह का शासन-काल

धर्म, भाषा और शिल्प-साहित्य की उन्नति बहुत अशों में राज्याश्रय पर अधिक निर्भर करती है। सोने का वह सयोग बगला को मुसलमानी दरबार में मिल गया। चौदहवीं सदी के मध्य में शम्सुद्दीन इलियासशाह ने दिल्ली के बादशाह की अधीनता के तौक को बगाल के गले से उतार फेका और बगाल में स्वाधीन सुलतान-शासन कायम किया। तत्काल ही ऐसा अवसर तो न आ सका कि साहित्य के लिए सृष्टि की धूम पड जाय, पर तब से शान्ति और सुव्यवस्था के थोडे-बहुत आसार नजर आने लगे और साहित्य-साधना की जमीन तैयार होने लगी। पन्द्रहवीं-सोलहवीं सदी में सुलतानों एव मुस्लिम राज-कर्मचारियों ने प्रेरणा और प्रोत्साहन देकर बहुत सारी रचनाएँ कराईं। यों मुसलमान जहाँ से और जितनी दूर से भी चाहे आये, बगाल के लिए उनमें सहज आत्मीयता उपजी। वहाँ के सामाजिक आचार-विचार, पर्व-उत्सव, गीत-नृत्य, देवी-देवता धीरे-धीरे उनके भी अपने-से हो आए। 'रामायण' और 'महाभारत' में प्रभाव की एक अजीब शक्ति थी, उस शक्ति

ने भी उनके जी को छुआ। किन्तु मस्कृति के दुर्भेद्य किले के अन्दर से उस रम का उद्धार उनके लिए सम्भव नही था। इसलिए उन्हे भाषा के सहज साँचे मे ढलवाने की उत्कट इच्छा हुई और उस इच्छा को रूप देने की कोई कोशिश उन्होने उठा नही रखी। उनकी प्रेरणा और प्रोत्साहन से धीरे-धीरे शास्त्र-ग्रन्थो तथा काव्यो के अनुवाद होने लगे।

'परागली महाभारत'

'महाभारत' का बगला मे सबसे पहला अनुवाद नासिर शाह ने कराया था। उसकी प्रति तो अभी तक नही मिली है, पर उसका प्रमाण जरूर मिला है। हुसैनशाह, (जिनका जिक्र आगे आयगा,) ने मगो को दमन करने के लिए अपने एक सेनापति को चटगाँव भेजा था। उसका नाम था परागल खाँ। अपने नाम से उसने वहाँ परागलपुर गाँव भी बसाया था। उन्होने कवीन्द्र परमेश्वर से 'महाभारत' का अनुवाद कराया था, 'परागली महाभारत' के नाम से वह बहुत ही मशहूर है। इस 'महाभारत' मे स्त्री पर्व तक लिखा गया है और कुल मिलाकर १७००० श्लोक है। उसी 'महाभारत' मे यह उल्लेख मिलता है कि नसरत खाँ ने पाञ्चाली की रचना कराई थी .

श्री युक्त नायक से जे नसरत खान।
रचाइल पाचाली जे गुणेर निदान॥

विद्यापति की भणिता मे भी नासिर शाह का नाम मिलता है .

से जे नासिरसाह जाने जारे हनल मदन बाने।
चिरजीव रहु पच गौडेश्वर कवि विद्यापति भाने॥

पचगौड या पचशाखा

पदो की भणिता मे इस पञ्चगौडेश्वर का समावेश बहुत मिलता है। उसका एक कारण है। मुस्लिम-विजय से कुछ दिन पहले तक भी सारस्वत, कान्यकुब्ज, गौड, मिथिला, उत्कल—ये पॉच-भूभाग पञ्चशाखा या पञ्चगौड कहलाते थे। बील ने हुएनसॉग का जो भ्रमण वृत्तान्त लिखा है,

उसमे भी गौडेश्वर के लिए 'लार्ड आव दि फाइव इडीज' लिखा है। इन पञ्च शाखाओ मे पहले बडी घनिष्ठता थी और बगाल ने आदान-प्रदान मे उनसे बहुत-कुछ पाया है।

बगाल को मिथिला का दान

मिथिला से बगाल को भाषा का दान, लिपि और सस्कृति की शिक्षा मिली है। विद्यापति की ललित भाषा ने बगला को इतना प्रभावित किया कि वहाँ के पदकर्ताओ ने धडल्ले से अनुकरण किया। फलस्वरूप मैथिली और बगला की खिचडी पककर 'ब्रजबुली' बन गई। बगाल का सारा वैष्णव-साहित्य उसीमे है, यहाँ तक कि रवीन्द्रनाथ ने भी ठाकुर भानुसिह की पदावली उसीमे शुरू से अखीर तक लिखी है। मैथिली अक्षर भी बगला मे अपनाया गया था। मैथिली लिपि मे 'ब' के नीचे बिदी दी जाती है, बंगला की अनेक पुरानी पोथियो मे वैसा ही 'ब' पाया गया है। कान्य-कुब्ज ने पञ्च ब्राह्मण और पञ्चकायस्थ बगाल को भेजा था। साथ ही पाञ्चाली गीत की जो परम्परा पुराने बगला-काव्य मे चल पडी थी, वह भी पाञ्चाल का ही दान है, ऐसा लोग-बाग कहते है।

पाञ्चाली

अठारहवी सदी तक बगला-साहित्य की धारा मूलतया गीति-मूलक थी। ये अकेले या सामूहिक तौर पर मृदग-मँजीरे के साथ गाये जाते थे। कई लोग कहते है, चूँकि पाञ्चालिका या कठपुतली के नाच के साथ वे काव्य गाये जाते थे, इसलिए उनका नाम पाञ्चाली पडा और रूढ हो गया। काव्य-मात्र को पाञ्चाली कहा जाने लगा—जैसे भारत पाञ्चाली।

विजय या मगल-काव्य

बगला मे सन्-तारीख से युक्त जो पहला कृष्णलीला-विषयक काव्य मिला है, वह कवि मालाधर बसु का है। यह काव्य कवि से रुकनुद्दीन बार्बक शाह ने सात वर्षों मे—सन् १४८१-८७—लिखाकर पूरा कराया था। उनके काव्य का नाम है, 'कृष्ण-विजय।' इसीको लोग 'श्रीकृष्ण मगल' या 'गोविन्द

मगल' भी कहते थे। उन दिनो पाचाली मे देवता या देवता के समान पुरुप के गुण-कीर्त्तन की परिपाटी थी, इसलिए वैसे काव्यो को विजय या मगल शब्द से युक्त कर दिया जाता था। पहले इस अर्थ मे इस शब्द का व्यवहार जयदेव ने ही किया था।

सुलतान हुसैन शाह

परागल खॉ के पुत्र छोटे खॉ ने भी श्रीकर नन्दी नाम के कवि से 'महाभारत' अश्वमेध पर्व का अनुवाद कराया था। साहित्य और विद्या-चर्चा मे सुलतानो मे सबसे ज्यादा मशहूर हुसैन शाह हुए। पहले ये एक मामूली-से कर्मचारी थे पर अपनी योग्यता से खासी शक्ति बटोरकर उन्होने राजगद्दी पर कब्जा जमा लिया। सुलतान होने पर उन्होने अपना नाम रखा, सैयद अलाउद्दीन हुसैन मुजफ्फर शाह शरीफे-मक्का। यो ये पहले खासे हिन्दू-विरोधी थे और बहुत सारी मूर्तियॉ तोडी थी। बाद मे विद्या और साहित्य-चर्चा मे उन्होने आशा से अधिक उत्साह दिखाया। उनके दरबार मे शास्त्र और काव्य की नियमित आलोचना होती थी। अच्छे-अच्छे विद्वान् और कवि पलते थे। उन्होने साहित्य की श्री-वृद्धि मे खूब हाथ बटाया और थोडे दिनो मे बडे ही यशस्वी तथा लोकप्रिय हो उठे। श्रीकरनन्दी के महाभारत-अनुवाद मे परोक्ष रूप से उन्हीका हाथ रहा था। यशोराज खान उन्हीके कर्मचारी थे, जिन्होने कृष्ण-लीला पर एक काव्य लिखा था। 'भणिता' मे हुसैन शाह का नाम आया है .

साह हुसैन जगत भूषण सेह येह रस जाने।
पच गौडेश्वर, भोग पुरदर माने यशोदराज खाने ।।

पद्रहवी सदी के आखिरी दशाब्द मे जो 'मनसा-मगल' काव्य लिखा गया, उसमे भी हुसैन शाह का नाम आया है :

सनातन हुसैन शाह नृपति तिलक।

हुसैनी साहित्य-काल

उनके किये उस युग मे साहित्य मे एक नवीन चेतना और नया जीवन

आया। बगला भाषा और साहित्य के इतिहासकार दिनेशचन्द्र सेन ने तो लिखा है . **'इस सम्राट् के नामानुसार साहित्य के गौडीय युग मे एक खण्डयुग सीमित करके उसे 'हुसैनी साहित्य-काल' कहा जाय तो अनुचित न होगा।'** उनके राजत्व-काल की एक अविस्मरणीय घटना यह भी है कि वैष्णव-धर्म के परम उन्नायक और साहित्य मे नवजागरण के मन्त्र-दाता महाप्रभु चैतन्य का आविर्भाव भी उसी समय (सोलहवी सदी मे) हुआ।

मुसलमानो की साहित्य-साधना

मुसलमानो का श्रेय सिर्फ इतना ही नही रहा कि उन्होने रचनाकारो को आश्रय और उत्साह दिया, बल्कि बहुतेरो ने स्वय बगला मे रचनाएँ भी की। कृष्ण-लीला के एक कवि यशोराजखान की चर्चा अभी हमने की है। आराकान-दरबार के वजीर मगन ठाकुर (ठाकुर से भ्रम न हो, ये मुसलमान थे।) के आदेश से कवि अलाइल ने जायसी के 'पद्मावत' के आधार पर 'पद्मावती' की रचना की थी। 'सैफुलमुल्क', 'वदीउज्ज-माल', 'तोहफा', 'सिकन्दरनामा' आदि अलाउल की और भी रचनाएँ है, पर सबमे श्रेष्ठ, सुन्दर और लोकप्रिय 'पद्मावती' ही बन पडी है। अलाउल सत्रहवी सदी के एक समर्थ कवि थे। वे रहने वाले तो फरीदपुर के जलाल-पुर के थे। एक बार वे अपने पिता के साथ नाव पर कही जा रहे थे। राह मे पोर्तगीज जल-दस्युओ ने उनके पिता को मार डाला। लाचार वे आराकान मे मगन ठाकुर की पनाह मे पहुँचे। उनमे खासी प्रतिभा थी।

पद्मावती-काव्य

'पद्मावती' मे उनकी काव्य-प्रतिभा का ही परिचय नही है, पाण्डित्य भी है। रगण-मगण आठ महागण, आठ नायिका-भेद, विरह की दस दशा आदि का उसमे बारीकी से विचार भी किया है। बहुत जगह जायसी से उनकी पक्तियाँ हू-बहू टकरा जाती है। जैसे :

सुमिरो आदि एक करतारू। जे जिव दीन्ह कीन्ह ससारू ॥[1]
प्रथमे प्रणाम करि एक करतार। जेइ प्रभु जीवदाने स्थापिल ससार ॥[2]
प्रकट गुप्त सो सर्वबियापी। धर्मी चिन्ह न चिन्है पापी ॥[3]
अप्रकट गुप्त आछे सबाकारे व्यापि। धार्मिक चिनपे तारे नाचिनपे पापी ॥[4]

अराकान-दरबार और साहित्य-समादर

अराकान राज-सभा का साहित्य-समादर उल्लेखनीय है। वहाँ जिन कवियो को प्रतिष्ठा मिली, उनमे से लगभग सभी मुसलमान थे। वही के एक कर्मचारी अशरफ खाँ के कहने पर दौलत काजी ने 'मैनामती' काव्य आरम्भ किया था, जिसे खत्म करने के पहले ही वे चल बसे। कहते है, कवि अलाउल ने ही उसे पूरा किया। 'अलिफलैला' के ढग की कहानियो का बगला मे सबसे पहले वही के दरबार की मार्फत प्रवेश हुआ था। सुलेमान नाम के किसी व्यक्ति ने वैसी कहानियो की एक पुस्तक लिखी थी। परागल-खाँ के बसाये परागलपुर मे एक कवि सैयद सुलतान नाम के थे। उनके तीन ग्रन्थ पाये जाते है—'ज्ञान प्रदीप', 'नबी वश' और 'शबे मीराज'। 'शबे मीराज' का दूसरा नाम 'उफात रसूल' है, जिसमे मुहम्मद साहब का चरित है।

नबियो मे हिन्दू-अवतार

नबी वश एक भारी-भरकम काव्य है। उसमे बारह नबियो की कथा लिखी है और मजा यह है कि नबियो मे ब्रह्मा, विष्णु, शिव और कृष्ण भी शामिल है ?

यह अपने ढग की एक ही अजीब बात नही है, ऐसी मिसाल तो बहुतेरी किताबो मे मिलती है। असल मे हिन्दू-मुसलमान अरसे तक पास-पास

---

१. जायसी।
२ अलाउल।
३ जायसी।
४ अलाउल।

रहे। हिन्दुओ के रहन-सहन और सस्कृति की उन पर गहरी छाप पडती रही। इस तरह न केवल बगला उनकी मातृभाषा बनी, बल्कि हिन्दुओ के देवी-देवता, पूजा-त्योहार, धर्म-विश्वास भी बहुत अशो मे उनके अपने-से हो बैठे। एक युग था कि बगाल मे जहाँ देखिये, मनसा-मगल-गान लिखे और गाये जाते थे, गाये तो खैर अब भी जाते है। मनसा-मगल-गानो मे राजशाही के मुसलमानो का कभी एकाधिकार-सा रहा। और बात दूर रहे, हिन्दू-मुस्लिम-मिश्रित देवता की भी कल्पना की गई।

सत्यपीर की कल्पना

ऐसे एक देवता बन गए सत्यपीर—सत्य और पीर की कलम लग गई। उन पर लिखे गए गीतो की भरमार है, जिन्हे गा-गाकर फकीर आज भी अपनी रोटी चलाते है। उधर के गॉवो मे सत्यपीर के गायक फकीर जहॉ-तहॉ, जब-तब देखे जा सकते है। सत्यपीर की गुण-गाथा भी खूब है। एक बानगी .

सत्यपीरेर नाम निये जे पथे चले जाय।
महिषे ना मारे ताके बाघे नाहि खाय॥

मतलब यह हुआ कि जो सत्यपीर का नाम लेकर राह मे निकलते है, उन्हे भैसे नही मारते, उनको बाघ नही खाता।

मुसलमान और हिन्दू-देवी-देवता

मायानी गाजी नाम के एक कवि ने इन सत्यपीर की पूरी पाचाली ही लिखी है। शिव, सरस्वती, चण्डी आदि की वन्दना भी बहुतेरे मुसलमान-कवियो ने लिखी है। एक पोथी है—'इमामयात्रार पुन्थि'। एक मुस्लिम कवि की रचना है, जिसकी सरस्वती-स्तुति देखिये ·

आय मॉ सरस्वति तुमि आमार माँ।

कवि करीम उल्ला की एक रचना है, 'यामिनी बहाल'। पुस्तक की नायिका एक मुसलमान स्त्री है और वह शिव की उपासिका है।

मिर्जा हुसैन अली

मिर्जा हुसैन अली नाम के भी एक कवि हो गए है, जो एक जमीदार थे और बडी धूम-धाम से काली की पूजा किया करते थे। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने दससाला बन्दोबस्ती का जो नियम चलाया था, उसके कागजात मे उनका नाम मिला है। उनकी एक मजेदार कविता है :

जा रे शमन ए बार फिरि एसो ना मोर आँगिना ते '
दोहाइ लागे त्रिपुरारि, यदि कर जोर जबरि
सामने आछे जज काछारि।
आमि तोमार कि धार धारि
श्यामा मायेर ख़ास तालुके बसत करि।
बले मिर्जा हुसेन आलि, जा करे माँ जय कालि
पुण्येर घरे शून्य दिपे पाप निये जाओ निलाम करि।

अर्थात् ऐ शमन, लौट जाओ, मेरे आँगन मे मत आओ। त्रिपुरारि की दुहाई है, अगर तुमने कही जोर-जबरदस्ती की तो, वह रही सामने जजी कचहरी। भला मै तुम्हारा कौन-सा कर्ज खाये बैठा हूँ, श्यामा माँ की खास जिमीदारी का मै बाशिन्दा हूँ। मिर्जा अली हुसैन कहते है, जो करे माँ काली, पुण्य के घर शून्य देकर पाप को नीलाम करके ले जाओ।

वैष्णव-काव्य और मुस्लिम कवि

वैष्णव-साहित्य की जो प्रबल बाढ आई, उसने मुस्लिम-हृदयो मे भी खूब हलकोरे उठाये। हिन्दी मे रसखान 'ब्रज-गोकुल गाँव के ग्वारन' जा बसने को बेताब हो उठे थे, आलम शेख को हसरत रह गई कि **'जा रसना सो करी बहु बातन, ताकी अब कान कहानी सुन्यौ करै'**, या **'हिन्दुआनी ह्वै रहूँगी मै'** की जो कामना तडप उठी थी, कृष्ण-लीला के उमगते उफान मे बगाली मुसलमान-कवि भी एडी से चोटी तक सराबोर हो गए। कृष्ण-भक्ति के काव्य अनेक ने लिखे, जिनमे से प्रमुख है, नसीर मुहम्मद

सैयद मुर्तजा, अबीरदा, करम अली। करम अली की कविता का एक नमूना :

कान्या कान्या बोलितेछे श्रीमति राइ।
आन्या दे आन्या दे मोर नागर कानाइ॥
शुन् आप वृन्दा दूती बोलि तोमारे।
मथुराय गेलो होरि आन्या दे मोरे॥

यानी रो-रोकर राधिका कहती है कि मेरे नागर कन्हाई को लिवा ला। अरी ओ वृन्दा दूती, सुन जा, तुझे बताऊँ, मेरे कन्हाई मथुरा गये है, उन्हे मेरे पास बुला दे।

और भी ऐसे अनेक उदाहरण दिये जा सकते है।

: ४ :

चैतन्य-पूर्व बंगला-साहित्य
(प्रारम्भिक विकास-काल)

राज्य और धर्म

हिन्दी के समान बगला-साहित्य की भी शुरुआत कविता से ही हुई और वह क्रम उसके आदिकाल से अठारहवी सदी तक एक-सा चलता रहा। भाषा तथा साहित्य की पुष्टि के दो बडे सहायक होते है, राज्य और धर्म। बगला के पुष्टि-साधन मे इन दोनो ही सहायको ने अपना-अपना हिस्सा बटाया। रचनाओ के लिए बाहरी प्रेरणा तो राज्य से मिलती रही और आतरिक धर्म से। धर्म की इस प्रबल अनुप्रेरणा की गहरी छाप सदियो की साहित्य-साधना पर हम स्पष्ट देख सकते है, बल्कि राजनीतिक उथल-पुथल के वैसे खास चिह्न ढूँढे कम मिलते है।

तत्कालीन साहित्य और लोक-धर्म

साहित्य मे समाज की आत्मा धडकती है, और इस सूत्र से हम सहज ही जान सकते है कि धर्मप्राणता बडी प्रबल रही। जिन हड्डी-पसलियो का शरीर बगला का बना वह धर्म-भावना थी, 'शिवायन', 'मनसा-मगल', 'चडी मगल', 'पदावली' आदि उसीकी विभिन्न अभिव्यक्ति है, जो बगला की साहित्य-साधना का सर्वस्व रहा है। धर्म का शास्त्रीय स्वरूप जो रहा सो रहा, लौकिक धर्म का प्रभाव ही प्रबल रहा। यह कहे तो अत्युक्ति न होगी

कि सहज लोक-धर्म के विविध स्वरूप ही युगो तक साहित्य के प्रधान अव-लम्ब रहे।

शैव धर्म

हिन्दू धर्म ने दुबारा जब प्रबलता से सिर उठाया, तो शैव धर्म ही पहले आगे आया, इसके ऐतिहासिक सबूत मिलते है। किन्तु वह भाव-धारा जन-मन को वैसा नही झकझोर सकी, ऐसा अनुमान किया जा सकता है। क्योंकि शिव-सम्बन्धी बृहत् रचनाओ का पता नही चलता। एक बडा पुराना प्रवाद चला आता है, **'धान मानते शिवेर गीत'**। धान कूटने मे शिव का गीत चलता था। 'मनसा मगल', 'चडी मगल', यहाँ तक कि 'गोरक्ष-विजय' मे भी मुखबन्ध मे शिव की स्तुति पाई गई है।

प्राप्त साहित्य मे शिव का स्वरूप

'शून्य पुराण' मे शिव पर एक परिच्छेद है। बाद के तो कई ग्रन्थो में—'मृगलब्ध पुन्थि', रामेश्वर-कृत 'शिवायन'—मे शिव-महिमा वर्णित है। फुटकल रचनाओ को छोडकर इस पर मूल्य-महत्त्व देने वाली कोई रचना नही मिलती। जो छुट-पुट रचनाएँ है, उनमे शिव का स्वरूप सुनने ही लायक है। भग-धतूरा खाने वाले शिव किसानो को खेती के उपदेश देते है कि जोक और मच्छर कैसे भगाये जाते है! गार्हस्थिक उपयोगितावाद की एक झलक मिलती है। जैसे 'गोरक्ष-विजय' के उल्लेख की कुछ पक्तियाँ देखिये

> **भाँग खाइबे धुतरा खाइबे खाइबे भाँगेर गु डा।**
> **पिरथिमि मजले शिव ना हइबे बूडा॥**
> **श्मशाने मशाने थाकबे माथवे भस्म छालि।**
> **सगले डाकबे तबे पागला शिव बुलि।**
> **भूत पेरेतेर लगे एकत्रे कोरबे बास।**
> **अध्येर सागरे पइडा थाकबे बारो मास।**

'शून्य पुराण' मे शिव

रमाइ पण्डित के 'शून्य पुराण' मे, जो काफी पुराना है, खेती-बारी की बाते आई है कि शिव के निर्देशन मे किस मुस्तैदी से खेती-बारी हो रही है। वामाचारियो के तन्त्रो मे तो ऐसा आया है कि शिव-गौरी को वशीकरण की बाते बताते है। बगला की पजिकाओ मे आज भी ऐसी तस्वीर छपती है कि शिव पार्वती को गृहस्थी के उपदेश देते है। गृहस्थो की वृत्ति के अनुरूप ही उनका स्वरूप चित्रित हुआ है।

'मनसा मगल'

सबसे अधिक प्रभाव मनसा और मगल चडी का ही मालूम होता है, जिन पर बहुत ज्यादा काव्य लिखे गए। मनसा साँपो की देवी है और उस पर ज्यादा नही तो कम-से-कम ६२ विभिन्न काव्य मिलते है। पन्द्रहवी सदी तक काणा हरिदत्त, नारायणदेव और विजय गुप्त 'मनसा-मगल' के अच्छे कवि हुए।

'मनसा मगल' की कहानी

'मनसा' मे शिव की कथा कही गई है, पर जो कहानी बगाल की पाचालियो मे है, पुराणो से उसका कोई लगाव नही—वह बगाल की निजी कथा है। कहते है, मनसा पैदा होते ही पूर्ण वयस्क हो उठी और साँपो की स्वामिनी बनी। जरत्कारु मुनि से मनसा के एक लडका हुआ—आस्तीक। जनमेजय के सर्प यज्ञ से आस्तीक ने साँपो की रक्षा की। मनसा की इससे प्रतिपत्ति बढी। मगर उसके मन मे बदला चुकाने की एक आग जल रही थी। शिव की स्त्री चडी ने वैर से मनसा की एक आँख फोड दी थी। इसका बदला लिये बिना चैन कहाँ। सो मनसा ने यह निश्चय कर लिया, वह चडी के उपासको से पूजा लेकर चडी को नीचा दिखायगी। मनसूबा गँठा और उसकी कोशिश चलने लगी। बनियो मे चाँद सौदागर बडा नामी-गिरामी था और वह चडी का भक्त था। मनसा ने फरेब से चाँद की पत्नी सनका से पूजा ली। चाँद से यह न सहा गया। उसने एक

दिन मनसा की सारी पूजा-सामग्री को लात से ठोकर मारी। मनसा ने वैर वसूलना चाहा। चॉद के छै पुत्र वाणिज्य से लौट रहे थे, वे पोत सहित डूब मरे। चॉद का छोटा लडका लखिन्दर बच रहा, जिसकी शादी उसने बडी धूम-धाम से कर दी। उसके लिए छेदहीन लोहे का घर बनाया। फिर भी मनसा के चलते लखिन्दर सॉप के काटने से मर गया। बिहुला एक बेडे पर पति की लाश रखकर नदी मे बह चली। गगा-सगम पर एक धोबिन से उसका परिचय हुआ, वह देवताओ के कपडे धोती थी। बिहुला उसे राजी करके स्वर्ग गई। नाच-गाकर देवताओ को रिझाया। देवताओ ने मनसा को मनाया। विपुला ने वादा किया कि अपने ससुर से वह मनसा की पूजा करायगी। उसे पति मिला। चॉद ने पूजा की। उसके छहो बेटे उसे वापस मिले। खुशी मनी।

मनसा-मगल-काव्य-परम्परा

आज तो लोग इसकी ऐतिहासिकता की भी हामी भरते है और चॉद के घर-द्वार की छान-बीन और पता-ठिकाना बताते है। लेकिन हकीकत मे यह एक कपोल-कल्पना है, शुरू से अखीर तक मनगढत। किन्तु इसी कथा पर पिछले कुछ सौ वर्षो मे बगाल मे विशाल साहित्य तैयार हो गया है। मनसा की पूजा होती है। सावन मे बगाल मे मनसा की मासान-यात्रा होती है। महीने-भर उसके गीत अभी भी गाये जाते है। मनसा के लोक-प्रचलित गीत तो शायद और पहले से प्रचलित रहे हो, पर जो लिखित पहला 'मनसा-मगल' मिला है, उसके कवि विजय गुप्त है, जिन्होने पुस्तक की रचना सन् १४९५ मे की। पुस्तक मे हुसैन शाह सुलतान का जिक्र है। उसी पुस्तक से यह भी पता चलता है कि उनसे पहले काणा हरिदत्त ने 'मनसा-मगल' की रचना की थी। पर उसका एक ही पद मुश्किल से मिल सका है। कवि नारायणदेव विजय गुप्त के ही समसामयिक थे। जिन्होने 'पद्म पुराण' की रचना की। विजय गुप्त की रचना के साल ही भर बाद विप्रदास ने अपना 'मनसा-मगल' लिखा।

रचनाओ का साहित्यिक मूल्य

जहाँ तक साहित्यिक मूल्य की बात है, वह इन रचनाओ मे मामूली है, किन्तु तत्कालीन सामाजिक और धार्मिक तथ्यो से रचनाएँ पूर्ण है। काव्य मे कथानक करुण-प्रधान है, पर विजय गुप्त की रसिकता जगह-जगह फूट उठी है, जो कि उसमे ग्राम्य-दोष है। जैसे, पद्मा के विवाह मे शिव-दुर्गा की आपसी बात वाला स्थल। शिव कहते है, कन्या-दान के लिए चुन-बीनकर अद्भुत दामाद ले आया हूँ, जरा घर सजा लो। दुर्गा ने कहा, भले आदमी, कहते लाज भी नही आती, घर मे धरा क्या है कि साज-सज्जा हो। मगल-गान गाने अभी लोग-बाग आयँगे, वे पान माँगेगे, तेल-सिन्दूर माँगेगे। शिव ने हँसकर कहा, उसकी दवा मै जानता हूँ, आँगन मे नगा खडा हो जाऊँगा लाज-भय से सब भाग-खडे होगे .

जामाइ एनेछि पुण्यवान कन्या करिब दान
विवाहेर सज्जा करो घरे।
हासि बले चडि आइ तोमार मुखे लज्जा नाइ
किबा सज्जा आछे तोमार घरे।
एयो एसे मगल गाइते ताराचाइबे पान खाइते
आर चाइबे तैल सिन्दूरेते।
हासि बले शूलपाणि एयो भंडाइते जानि
मध्ये दाँडाब नेगटा होये।
देखिया आमार ठान एयोर उडिबे प्राण
लाजे सबे जाबे पलाइये।

मगल-काव्य की परम्परा

चैतन्य-पूर्व-काल मे इस मगल-काव्य की जो परम्परा शुरू हुई, वह सदियो चलती रही। समय-समय पर उसमे नई कडी भी जुडती गई, जिसमे छोटी-छोटी व्रत-कथाओ ने धीरे-धीरे काव्य का रूप ले लिया। शीतला-मगल, षष्ठीमगल, सूर्य की पाचाली, विद्यासुन्दर और दक्षिणराय की कथाओ पर

काव्य रचे गए। दक्षिणराय व्याघ्र देवता है—**नमामि दक्खिनराय सुन्दर-वनेवास**। साहित्य का मूल्य इनका चाहे वैसा न हो, पर साहित्य के लिए ये बेशक बड़े मूल्यवान रहे।

चैतन्य-पूर्व साहित्य

चैतन्य-पूर्व-काल मे हमे कुछ महाकवि और महाकाव्य मिलते है, जिनका स्थान बगला मे आज भी वैसा ही बना हुआ है। 'रामायण', 'भागवत' और 'महाभारत' का अनुवाद यही से शुरू हुआ। जिस पदावली-साहित्य ने बगला और बगाल के लोक-जीवन को सबसे ज्यादा उद्‌बुद्ध किया, उसका श्रीगणेश इसी युग मे हुआ। पदावली-साहित्य-गगन के चॉद और सूरज, विद्यापति और चडीदास की प्रतिभा का स्वर्णिम आलोक इन्ही दिनो मे फूटा, जिनकी अत.प्रेरणा ही साहित्य के लिए प्राण बनी और बगला मे एक नये युग के प्रतिष्ठाता चैतन्य के लिए जिसने जमीन तैयार की।

कृत्तिवासी रामायण

हिन्दी मे जो स्थान तुलसीदास की 'रामायण' का है, बगला मे वही स्थान 'कृत्तिवासी रामायण' का। पॉच-छै सौ साल पहले वह रामायण रची गई—पन्द्रहवी सदी के आरम्भ मे। किन्तु आज तक झोपड़े से महल तक उसका वैसा ही आदर बना हुआ है। बाद की सदियो मे रामायण-रचना की चेष्टाएँ तो कई हुई, पर 'कृत्तिवासी रामायण' की लोकप्रियता ने उसे एक जातीय काव्य बना दिया है और एक युग से वह समग्र बगाल के लोक-समाज को नैतिक शक्ति और आध्यात्मिक तृप्ति देता आ रहा है। इसके दो कारण है, वाल्मीकि का हू-बहू अनुवाद नही होते हुए भी 'रामा-यण' की कथा इसमे सुरक्षित है और उसकी भाषा पाण्डित्य से बोझिल न होकर अनुभूतियो के अनुकूल सहज, सरल अनवद्य है। तुलसीदास ने जिस प्रकार राम को आदर्श पुरुषोत्तम बनाया है, कृत्तिवास ने भी उन्हे मानवी गुणों से विभूषित किया है, केवल असामान्य बल-पौरुष और कृतित्व से उनमे ईश्वरत्व का आभास मिलता है।

कृत्तिवास और उनका काल

कृत्तिवास ने अपनी कृति मे कही तत्कालीन राजा का नाम नही लिया है, पर उनके आत्म-विवरण से यह ज्ञात होता है कि वे या तो राजा कस या गणेश के राजत्व-काल मे हुए थे। जिस राज-सभा का उन्होने वर्णन दिया है, वह सभा हिन्दू-राजा की ही हो सकती है। कृत्तिवास के पिता का नाम वनमाली और माता का मालिनी था। उन्होने नाना शास्त्रो की शिक्षा पाई थी और गौडेश्वर को अपने पाण्डित्य के प्रभाव से चमत्कृत कर दिया था। सात श्लोको की तत्काल रचना करके कवि ने सभा मे राजा का अभिवादन किया था। राजा ने प्रसन्न होकर कवि को पुरस्कार देने की इच्छा जाहिर की थी—किन्तु कवि ने कहा, मुझे धन-सपद् की तनिक भी इच्छा नही है। मै सिर्फ अपनी रचना की श्रेष्ठता को ही सुनना चाहता हूँ।

कृत्तिवास की भाषा

'कृत्तिवासी रामायण' की रचना जिस सदी मे हुई थी, उसके अनुसार भाषा मे जो पुरानापन होना चाहिए था, वह नही है। हो सकता है, अपनी जरूरत से ज्यादा लोकप्रियता के कारण धीरे-धीरे लोक-मुख मे उसकी भाषा बदलती आई हो। 'रामायण' के सिवाय, 'योग्याढार बदना', 'शिव-रामेर युग', 'रुक्मागद राजार एकदशी' आदि अन्य कई पुस्तको मे भी कृत्तिवास की भणिता पाई गई है।

मालाधर वसु और 'कृष्ण-विजय'

'श्री कृष्ण विजय' नाम से भागवत का अनुवाद कवि मालाधर वसु ने किया था। कही-कही यह ग्रन्थ 'गोविन्द-विजय' के नाम से भी पाया जाता है। पुराने समय मे मृत्यु या यात्रा से सम्बन्धित रचनाओ को विजय नाम से युक्त कर दिया करते थे। भगवती की कैलाश-यात्रा का दिन 'विजया' है। 'श्री कृष्ण-विजय' के अन्तिम अध्याय मे कृष्ण के देह-त्याग का वर्णन है, हो सकता है, विजय नाम इसीसे दिया गया हो। कवि सस्कृत के

मर्मज्ञ थे, फिर भी उन्होने भागवत का अक्षरश अनुवाद नही किया है। उसकी मर्मवाणी भी बहुत-कुछ इसमे बदल गई है। भागवत की गोपिकाएँ कृष्ण को भक्ति-भाजन समझती थी, 'कृष्ण-विजय' मे प्रेमास्पद मानती है। काव्य सुन्दर बन पडा है। चैतन्य प्रभु को भी वह खूब भाया था।

मालाधर वसु का समय

मालाधर वर्द्धमान जिले के कुलीन ग्राम-निवासी थे। सुलतान से उन्हे 'गुणराज खान' की उपाधि मिली थी। इस खान उपाधि के बगाली लोग आज भी बगाल मे पाये जाते है। सुलतान के आदेश से कवि ने सात वर्षों मे भागवत का अनुवाद पूरा किया था—तेरह सौ पिच्चानवे मे उसे शुरू किया, चौदह सौ दो शकाब्द मे समाप्त किया। जैसा कि लिखा है .

तेर शो पचानइ शके ग्रन्थ आरम्भन।
चतुर्दश दुइ शके हैल समापन॥[1]

काशीरामदास और 'महाभारत'

रामायण-भागवत की तरह महाभारत-परम्परा की बुनियाद भी हुसैन शाह के समय ही पडी। यो बगला मे जो प्रसिद्धि और लोकप्रियता काशी-रामदास (सत्रहवी सदी के अन्तिम भाग मे) के 'महाभारत' की है, वह किसी की नही। किन्तु जो पूर्णता उसमे आ सकी है, उसका श्रेय उन प्राथमिक चेष्टाओ को ही है।

रामायण-महाभारत की कथा-परम्परा

मूलतया हमारे यहाँ क्या रामायण और क्या महाभारत, किसी एक कवि की निजी सृष्टि नही है। लोक-परम्परा मे चली आती हुई अनेक कथा-उप-कथाओ की योजनाकारिणी कोई अद्भुत प्रतिभा कभी प्रकट हो गई—वही कभी वाल्मीकि और कभी व्यास मे दिखाई दी। वाल्मीकि के पहले भी रामायण की कथा विभिन्न रूपो मे देश मे प्रचलित थी।

---

१ 'श्री कृष्णविजय'।

राम-कथा

ऐसा पता चलता है, तब उत्तर भारत मे जो राम-कथा थी, उसमे रावण का कही नामो-निशान नही था और दक्षिण मे रावण की ही गुण-गाथा गाई जाती थी। 'लकावतार सूत्र' और 'जैन-रामायण' से इस बात पर रोशनी पडती है। एक मे लिखा है कि रावण ने बुद्ध का शिष्यत्व ग्रहण किया था, दूसरे मे उल्लेख है कि उन्होने योग की अद्भुत साधना की और पञ्चभूत पर विजयी होकर इन्द्रियो को वशवर्त्ती कर लिया। इन कथाओ के ऐतिहासिक मूल्याकन की यहाँ गुञ्जाइश नही, पर ऐसा लगता है, वाल्मीकि मे ही वह युगान्तरकारी प्रतिभा प्रकट हुई, जिसने इन सारे विच्छिन्न सूत्रो की सगति और समन्वय से एक अनिन्द्य रस की सृष्टि की।

अन्यान्य महाभारतकार

बगला मे जो पहला 'महाभारत' मिलता है, वह कवीन्द्र परमेश्वर का है, जो 'परागली महाभारत' के नाम से मशहूर है। हुसैन शाह के सेनापति परागल खाँ ने उसे तैयार कराया था। 'परागली महाभारत' के सिवाय भी विजय पण्डित, नित्यानन्द घोष आदि के 'महाभारत' मिले है, जिनमे परस्पर इतना अधिक साम्य है कि सहज ही यह आशका उठती है कि हो न हो, इन सारे ग्रन्थो का आधार कोई दूसरा एक ग्रन्थ है। कवीन्द्र परमेश्वर के 'महाभारत' मे भी नसरत खाँ की प्रेरणा से रचे गए महाभारत की ओर इशारा है .

श्रीयुक्त नायक से जे नसरत खान।
रचाइल पाचाली जे गुणेर निदान॥

आदि महाभारतकार सजय कवि

इतिहासकारो ने इन सबके पहले के महाभारतकार का नाम दिया है सजय। यह संजय धृतराष्ट्र को युद्ध का आँखो-देखा वर्णन सुनाने वाले सजय न समझे जायँ, इसलिए सजय ने स्वय अपने बारे मे कहा है .

भारतेर पुण्य कथा नाना रसमय।
सजय कहिल कथा, रचिल सजय॥

यानी 'महाभारत' की पुण्य कथा अनन्त रसमयी है, जिसे सजय ने कहा और सजय ने लिखा। ऐसी भणिता बहुत बार आई है। सजय का पूरा काव्य तो कही नही मिला है, पर 'महाभारत' की बहुतेरी पुरानी पोथियो मे उनकी रचना के थोडे-बहुत अश पाये जाते है। लोगो मे एक प्रचलित बात यह भी पाई जाती है कि 'महाभारत' की गहराई तक जाना कठिन है, सो सजय ने लोक-हित के लिए बगला मे उसकी रचना की : **अति अन्धकार जे महाभारत सागर। पांचाली सजयताक करिल उज्ज्वल।** सजय की रचना का आधार, सम्भवत मागध भाटो के वे उपाख्यान-गीत हो, जो वे राज-दरबारो मे गाते फिरते थे। जो हो, सजय की भाषा ग्राम्य है। परिचय के सिवा उसमे से प्राजल रस की प्राप्ति नही होती।

श्रीकरनन्दी का व्यग्य

कवीन्द्र परमेश्वर-कृत 'परागली महाभारत' मे चटगॉव की पुरानी भाषा की बहुलता है, जो मुश्किल से समझ मे आती है। परागल खॉ के बेटे छोटे खॉ ने कवि श्रीकरनन्दी से अश्वमेध पर्व का अनुवाद कराया था। उसकी भाषा भी वैसी ही कठिन है, पर कही-कही मजेदार व्यग्य से कवि ने उसे रोचक भी बनाया है। उसमे से कृष्ण और भीम के सवाद की कुछ पक्तियॉ दी जाती है। कृष्ण कहते है, 'भीम बेहद खाता है, इसलिए उसका आकार-प्रकार स्थूल है और वैसी ही है उसकी सहचरी हिडिबा राक्षसी।' बिगडकर भीम ने कहा, 'खुद को न देखकर कृष्ण मेरी खिल्ली उडाते है। मेरे पेट मे भला कितना अन्न-व्यजन होगा, तुम्हारे पेट मे तो त्रिभुवन अट गया है। तुम्हारे घर जाम्बुवती भल्लुक कुमारी बैठी है, तुम बेचारी युवती हिडिबा की लिहडी लेते हो' :

कृष्ण

बहु भक्ख होये भीम स्थूल कलेवर।
हिडिम्बा राक्षसी भार्या जाहार सहचर।

भीम

कृष्णेर वचने भीम रुषिया बलिल ।
मोके मन्द बल कृष्ण निज ना देखिल ।
तोम्मार उदरे जतो बसे त्रिभुवन ।
आम्मार उदरे कतो अन्न व्यञ्जन ॥
भल्लुक कुमारी तोमार घरे जाम्बुवती ।
ताहा हैते अधिक बलो हिडिम्बा युवती ॥

विद्यापति और उनका प्रभाव

इस काल की विशिष्ट और साहित्य के लिए महत्त्वपूर्ण घटना विद्यापति और चण्डीदास का आविर्भाव है। हिन्दी-पाठको के लिए विद्यापति की विशेष चर्चा तो अनावश्यक ही होगी। कुछ ही पहले तक विद्यापति को लोग बगाली कवि मानते रहे थे। वह भ्रम अब दूर जरूर हो गया है, पर जो छाप बगला पर विद्यापति की रह गई है, वह तो कभी नही छूटने की। गीति-परम्परा की जो अबाध धारा आज भी बगला-साहित्य मे प्रवाहित है, उस उत्स की गति के दो ही मूल केन्द्र रहे—जयदेव और विद्यापति। बंगला का सम्पूर्ण पदावली-साहित्य जिस 'ब्रजबुलि' मे लिखा गया, उसकी गीतात्मकता और भाव-रूप मे जो प्रभाव ध्वनित है, वह विद्यापति की देन है, बगला और मैथिली दोनो की जन्मदात्री गौडी प्राकृत है और पिछले दिनो दोनो भू-भागो का सम्बन्ध भी बडा घनिष्ठ रहा है। इस बात मे दोनो की साहित्य-साधना मे समता भी है कि कृष्ण-लीला-विषयक रचनाओ से ही उनका श्रीगणेश हुआ। राजनीतिक कारणो से तेरहवी-चौदहवी सदी मे बगला का साहित्य-स्रोत छिन्न हो गया, किन्तु मिथिला मे वह क्रम नही टूटा और उन सदियो मे भी वहाँ साहित्य-चर्चा चलती रही। लिहाजा जब कि पन्द्रहवी सदी से पहले बगला मे कृष्ण-लीला के पद नही पाये जाते, मिथिला मे मिलते है। विद्यापति चौदहवी सदी के अन्त की ओर हुए। उन्हीके प्रभाव से परवर्ती पदावली-साहित्य का प्रचार-प्रसार बगाल,

आसाम और उड़ीसा में हुआ। बंगाली पदकर्ताओं ने उन्हींके अनुकरण पर 'ब्रजबुलि' में राधा-कृष्ण के प्रेम-विषयक गीत लिखे। हुसैनशाह के दरबार में एक कर्मचारी थे कवि शेखरराय, वे तो दूसरे विद्यापति ही कहे जाते थे और उसी भणिता से उन्होंने अनेक पद लिखे। अतएव जिन पदों में हुसैनशाह, नसरत खान आदि का उल्लेख है, बहुत सम्भव है, या तो वे बाद के पदकार है या उनमें वैसी भणिता जोड़ी गई है।

ब्रजबोली

ब्रजबोली के सम्बन्ध में बहुतों का ऐसा खयाल था कि यह ब्रजभूमि की बोली है और द्वापर में राधा-कृष्ण इसी भाषा को बोलते थे। किन्तु सोलहवीं से अठारहवीं सदी तक और पन्द्रहवीं में चण्डीदास ने जिस ब्रजबोली को पदों में अपनाया, वह सर्वथा अलग चीज है, वह बंगला और मैथिली की अपने ढंग की खिचड़ी है। बंगाली कवि चण्डीदास की रचना में धरम, करम, परताप, सिनान, सरबस, परसंग, परकार आदि अनगिन ऐसे शब्दों का व्यवहार हुआ है, जो उसी पद्धति पर गढ़े गए हैं। यह प्रभाव पदावली-साहित्य पर ही नहीं है, अन्य प्राचीन ग्रन्थों में भी मिलता है। जैसे 'कृत्ति-वास' में बहिन, शुतिल (सोने के अर्थ में, जो कि मिथिला में आज भी प्रच-लित है)। 'अनन्त रामायण' में—न जीवो, पिन्हई, किसक (क्यों), भैल आदि। संजय, कवीन्द्र परमेश्वर और श्रीकरनन्दी के 'महाभारत' में—काहाँ (कहाँ), बोलाव , चिन्ह (पहचाना), निंद (नींद), एहि, बाव (हवा) आदि। कवि रामेश्वर की 'सत्यपीर' की कुछ पंक्तियाँ देखिये :

> **विश्वनाथ विश्वासे बुझाए बते बाछा।**
> **दुनिया में एसामि आदमि रहे साँचा॥**
> **भाला बाबा काहे तेरा मृत्यु-काल काछे।**
> **रातदिन ऐसा तेसा सुख-दुःख होये॥**
> **जाना गेलो बात बाबा जाना गेलो बात।**
> **कापड़ा तो लेओ आओ मेरा साथ॥**

जाओत सत्यपीर मेरा जाओत सत्यपीर ।
तेरा दुख दूर करता हाम फकिर ॥

हिन्दी का प्रभाव

पारस्परिक सहयोग बढ जाने से आधुनिक हिन्दी का भी थोडा-बहुत प्रभाव आज के साहित्य मे है, किन्तु उस विषयान्तर मे जाना नही है। अनुनासिक शब्दो का पिछला प्रभाव अभी तक भी रह गया है और यह 'ञ' और 'ङ' का प्रभाव निर्विवाद हिन्दी का है। मिसाल के तौर पर पुँथि (पुस्तक), आँखि (अक्षि), कॉख (कुक्षि), कुँडे (कुटीर) आदि।

विद्यापति के राधा-कृष्ण

आज विद्यापति के पदो के बारे मे काम-गन्ध की चर्चा होने लगी है, पर वह भी दिन था जब अभिनव प्रेम-मार्ग मे लोगो को दीक्षित करने वाले महाप्रभु चैतन्य उन पदो को सुनकर आत्म-विभोर हो जाते थे। 'चैतन्य चरितामृत' मे लिखा है :

विद्यापति चडीदास श्रीगीत गोबिन्द ।
एइ तीन गीते कराय प्रभुर आनन्द ॥

जार्ज ग्रियर्सन साहब ने राधा-कृष्ण को आत्मा-परमात्मा का रूपक कह-कर पदो की आध्यात्मिकता की भूरि-भूरि प्रशसा की थी।

वैष्णव-साहित्य का प्राण-धर्म

सक्षेप मे यहाँ वैष्णव-साहित्य के प्राण-धर्म की चर्चा अप्रासगिक न होगी। वैष्णव-साहित्य का मर्म प्रेम-धर्म है। पदो मे उसकी प्रतिष्ठा राधा-कृष्ण की विभिन्न लीलाओ से की गई है, किन्तु उन लीलाओ मे भागवत-वर्णित रूप, चरित्र और विषय से थोडी-सी अभिनवता है। राधा-कृष्ण के रूप भी समय से रूपान्तरित होते आए है।

राधा-कृष्ण-चरित्र का क्रमिक विकास

बारहवी सदी से साहित्य का भक्ति-प्रवाह विशेषतया राधा-कृष्ण के

दो कूलो मे बँधकर बहने लगा है। आरम्भिक अवस्था मे कृष्ण परब्रह्म थे, उनके उस ऐश्वर्य-रूप से आगे राधा की आनन्द मूर्ति प्रकट हो आई। उपनिषद् आदि का 'राधस्' आज की राधिका का अर्थ-बोधक नही था। 'पद्म-पुराण', 'स्कद पुराण' से 'ब्रह्मवैवर्त्त पुराण' तक आते-आते राधिका कृष्ण की परकीया नायिका के रूप मे बदल गई। आभीरो के बीच राधा थी, पहली सदी की हाल की 'गाथा सप्तशती' मे उसका उल्लेख है। ढूँढने से इसकी काफी लम्बी ऐतिहासिक कडी मिलती है, पर वह विस्तार अनावश्यक है। पहले-पहल निम्बार्क ने राधा को दार्शनिक रूप दिया, किन्तु जयदेव के बाद ही राधा की प्रधानता व्यापक होती है और चैतन्य महाप्रभु के बाद तो उस पर आध्यात्मिकता का गहरा रग चढ जाता है।

प्रेम-धर्म के चार भाव

ईश्वर की पुरानी रूप-कल्पना की भी दो दिशाएँ रही है—उनकी शक्ति और ऐश्वर्य की दिशा, उनके प्रेम और रूप की दिशा। सक्षेप मे हम ऐश्वर्य और माधुर्य कह सकते है। उनकी उपासना तो दोनो ही रूपो मे की जा सकती है। थोडा-सा फर्क आता है। ऐश्वर्य रूप मे भगवान् देवता रह जाते है। भक्त से उनकी एक दूरी रह जाती है। माधुर्य उनका मानवीकरण है—यहाँ वे प्रेम की डोर मे बँधे आते है—कच्चे धागे मे। इसीलिए भगवान् के ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य आदि अनेक रूपो मे वैष्णवो ने उनके मधुर रूप को ही अपनाया। मधुर की उपासना मे भक्तो के मोटा-मोटी चार भाव होते है—दास्य, सख्य, वात्सल्य और शृङ्गार। 'चैतन्य चरितामृत' मे लिखा है :

दास्य, सख्य, वात्सल्य, शृङ्गार—चारि रस।
चरि भावेर भक्त जत कृष्ण तार वश॥

प्रेम की उत्पत्ति-कहानी

इन चारो की माला मे भी प्रेम ही मनका है। इस प्रेम (पीरीति) की उत्पत्ति की एक कहानी दीन चडीदास ने अपनी पदावली के दूसरे खड मे दी है। गो-लोक के कल्पवृक्ष मे प्रेम का एक सुन्दर फल लगा। देवताओ ने

शुक पक्षी को भेजा कि वह फल तोड लाए। शुक अपनी चोंच मे उसे लेकर समन्दर पर से उडता हुआ लौट रहा था। पका फल था, फट गया। उसके तीन टुकडे हो गए। एक 'सुख सागर' मे, एक 'प्रेम सागर' मे और एक 'रस सागर' मे गिर गया। लाचार देवताओ को तीनो सागरो को मथकर उन टुकडो को निकालना पडा—पी री त। देवताओ ने वह फल विष्णु को दिया, वे उसे खा गए और बोले, इस फल के स्वाद का ससार मे प्रचार करने के लिए मै वृन्दावन मे अवतार लूँगा। तभी तुम लोग भी वहाँ इसका स्वाद पा सकोगे। पदावलियो मे राधा कृष्ण की प्रेम-साधना के जो रूप है, उन्हे मोटा-मोटी चार भागो मे बाँटा जा सकता है, पूर्वराग, प्रथम मिलन, विरह और सम्मिलन।

विभिन्न चडीदास

पदावली-कर्त्ताओ मे सबसे ज्यादा प्रसिद्ध और हिन्दी-ससार मे परिचित चडीदास है। छाया-चित्रो ने भी चडीदास और उसकी रामी की अपनी-जैसी धारणा लोगो को दी है। किन्तु उस कथानक की ऐतिहासिकता निर्विवाद नही है। चडीदास पन्द्रहवी सदी के अन्त के कवि थे, पर उनकी भणिता के पद अठारहवी सदी के प्रारम्भ से प्रचलित है। जितने पद चडीदास के नाम से है, उनमे प्रतिभागत फर्क भी स्पष्ट झलकता है।

दीन चडीदास

अब लगभग यह बात मानी जाने लगी है कि वास्तव मे चडीदास दो थे—चैतन्य से पूर्व जो चडीदास थे, वे थे बडू चडीदास और उनके बाद जो हुए, सो है दीन चडीदास। जिन बहुत ही सुललित पदो को हम मूल चडीदास के जानते रहे है, दुर्भाग्य से वे दीन चडीदास के है। जैसे :

पीरिति बोलिया ए तिन आखर
भुवने आनिल के।
अमृत बोलिया गरल भखिनु
विषेते जारिल दे।

अथवा

सोइ, के बले पीरिति भालो ।
हासिते हासिते पीरिति कोरिनु
काँदिते जनम गेलो ।

यानी, सखि, कौन कहता है कि प्रीत अच्छी चीज है । हँसते-हँसते तो प्रेम किया और रोते-रोते जनम बीता ।

कृष्ण-कीर्त्तन की प्राचीन प्रतिलिपि

'बगला भाषा ओ साहित्य' के लेखक का कहना है, दीन लिखने का एक साधारण शिष्टाचार है, इसलिए केवल उस भणिता से ही दूसरे एक चडीदास को खडा करना ठीक नही । लेकिन केवल भणिता क्यो, यह बिलगाव काव्य से भी देखा जा सकता है । बड़ु चडीदास के 'श्रीकृष्ण-कीर्त्तन' की एक प्राचीन प्रतिलिपि पाई गई है । उसकी भाषा ऐसी प्राचीन-सी है कि वह लगभग 'बौद्ध गान ओ दोहा'-जैसी लगती है । दीन चडीदास की भाषा बडी प्राजल और सादी है । चैतन्य-परवर्त्ती राधा के रूप मे भी बहुत परिमार्जन हुआ है ।

दोनो चडीदास की राधा

'कृष्ण-कीर्त्तन' की राधा एक हिन्दू-परिवार की नारी-जैसी लगती है, जब कि दीन चडीदास की राधा एक भक्त-हृदया की तस्वीर । दो स्थल तुलना के लिए दिये जाते है । दान-खण्ड मे ऐसा है कि राधा दही बेचने को जा रही है । बाट का महसूल अदा करते वक्त रूप-मोहित कृष्ण उसका आलिंगन कर लेते है, बड़ु चडीदास की राधा जैसे गड गई । धरती फटे और वह उसमे समा जाय, ऐसी अवस्था । इस अपमान से तो उसे जहर पी जाने की इच्छा हो आई :

पाखि जाति न हो बडाइ उडी पडि जाँव ।
यथा से कान्हाईर मुख देखिते ना पाँव ।

हेन मन करे विष खायाँ मरि जाँव।
मेदिनी विदार देउ पसियाँ लुकाउँ।

अर्थ साफ है। और दीन चडीदास की राधा कहती है, आज मेरा दान सफल हुआ कि तुम्हारा सग मिल गया। विधाता ने मिलन का अच्छा अवसर जुटाया :

आजु दान मोर हइल सफल
पाइल तोमार संग।
बिहि मिलाइल भाल घटाइल
बिकि किनि होलो रग॥

द्विज चडीदास

अभी श्री सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय और श्री हरेकृष्ण मुखोपाध्याय ने एक तीसरे चडीदास की सूचना दी है—द्विज चडीदास। किन्तु हमे उस विवाद मे यहाँ नही पडना है।

जो भी हो, बडू चडीदास एक उच्चकोटि के कवि थे। राधा का चित्र उनका बडा ही मनोहारी है। वे सम्भवतः नान्नूर के रहने वाले थे और वासुली देवी के सेवक थे। रामी धोबिन उनकी साधना-सगिनी थी, जिसकी ऐतिहासिकता सब तरह से प्रमाणित नही है। रामी के बजाय तारा, रामतारा उनकी प्रेमिका थी, ऐसा कई लोग कहते है।

विद्यापति और चडीदास

विद्यापति से इनकी मुलाकात हुई थी, अनेक जगह लोगो ने यह भी उल्लेख किया है। किन्तु दोनो के काल मे लम्बे अरसे का अन्तर है। दोनो की तुलना मे चडीदास को श्रेष्ठ ठहराने की चेष्टा की गई है, जिसकी जरूरत नही थी। विद्यापति की व्यापकता, पाण्डित्य, प्रतिभा और थी। विद्यापति की युवती राधा साहित्य मे अद्वितीय है। पद-लालित्य, शब्द-सौष्ठव, पर्यवेक्षण और स्वर-झकार—सब अनूठा।

तत्कालीन रचना की विशेषता

इस युग की रचनाओ मे गेयता विशिष्ट बात थी। 'मनसा मगल' या 'मगल चडी', सबको नियमित गाया जाता था। सबमे राग-रागिनियो का उल्लेख भी है। विद्यापति और चडीदास के पदो का तो कहना ही क्या। कई स्वर-विशेषज्ञो ने बताया है, इन पदो मे मूल रूप से ४० राग-रागिनियाँ है, जिनमे ३१ तो विशुद्ध है, और ६ मिश्रित।

: ५ :

विकास-काल

(चैतन्य-परवर्ती युग)

महाप्रभु चैतन्य का आविर्भाव

चैतन्य के आविर्भाव से बगला और बगाल के इतिहास मे एक नया और सुनहला अध्याय जुड गया। उनका जन्म हुआ था सन् १४८६ ई० मे नवद्वीप मे। तब बगाल की भीतरी हालत कुछ अच्छी नही थी। चारो ओर राजनीतिक अशान्ति थी। उच्च वर्ग के नौकरी-पेशा लोगो मे स्वेच्छाचारिता घर करने लगी थी। केवल ब्राह्मण पण्डितो मे ही आचारनिष्ठा सीमित हो गई थी और चूँकि पोषक नही रह गए थे, इसलिए पण्डित-सम्प्रदाय भी क्षीण-हीन होने लग गया था। जन-साधारण से आचार-विचार की निष्ठा विदा होने लगी थी। बहुत-से लोग जहाँ-तहाँ मुसलमान भी होने लग गए थे। देश और जाति के भाग्य की ओट मे सकट के काले बादल घिरने लगे थे। ऐसे मे एक ऐसी धर्म-चेतना का शक्ति-स्रोत अपेक्षित था, जिससे लोगो के डगमगाते विश्वास, हतबल हृदय को एक सहारा हो। देश की इसी जरूरत ने चैतन्य को जन्म दिया। उनके प्रेम-गद्गद् आँसू ने, भेद-भाव-विहीन प्रेम-धर्म ने विच्छिन्न बगाली जाति को एकता के एक धागे मे गूँथ दिया और नये युग के निर्माण की प्रेरक शक्ति दी।

वैष्णव भाव-धारा

साहित्य की धारा को वैष्णवता से ऐसा एक वेग और विस्तार मिला कि उससे तीन सदियों की लम्बाई प्लावित हो गई। सोलहवी से लेकर अठारहवी सदी तक बगला-साहित्य पर वैष्णवता की अमिट छाप रही। अक्सर सोलहवी सदी के बगाली कवि इसी भाव-धारा से प्रभावित और उसीके पोषक रहे। कवियो मे से लगभग सभी या तो चैतन्य के सेवक या सेवको के शिष्य रहे। पदावली-कर्त्ताओ की सूची बे-तरह लम्बी है। कोई पौने दो सौ नाम वैष्णव-कवियो की तालिका मे आते है, जिनमे से एक चडीदास को छोडकर बाकी सब-के-सब या तो चैतन्य के ही समय मे हुए, या उनके बाद।

चैतन्य का जीवन

चैतन्य के जन्म-काल का नवद्वीप नव्य न्याय का एक अच्छा केन्द्र था और सब ओर उसकी शोहरत थी। चैतन्य के समय मे भी रघुनाथ शिरोमणि और स्मार्त रघुनन्दन, दो मशहूर पण्डित हुए। चैतन्य भी सस्कृत की खासी योग्यता रखते थे। कुछ दिनो तक उन्होने सस्कृत की एक पाठशाला भी चलाई थी। छुटपन मे वे नटखट थे। गॉव-घर के लोग उनसे तग रहते थे। जवानी मे वह नटखटपन व्यग्यप्रियता मे बदल गया। उनके व्यग्य-बाणो से अच्छे-अच्छे पण्डितो के हौसले पस्त हो जाते थे। कहते है, दिग्विजयी पण्डित केशव के काश्मीर के शास्त्रार्थ मे उन्होने दॉत खट्टे कर दिए थे। उनका ब्याह लक्ष्मीप्रिया देवी से हुआ था, जिनकी मृत्यु सॉप के काटने से हो गई थी। चैतन्य को इसकी मार्मिक पीडा पहुँची थी। विष्णु-प्रिया से उनका दुबारा ब्याह रचाकर लोगो ने उन्हे ससार मे बॉधकर रखना चाहा था। मगर उनका घाव न भरा। पिता के श्राद्ध-तर्पण के लिए गया जो गये, तो नये चैतन्य होकर लौटे। ईश्वर पुरी से उन्होंने दीक्षा ले ली थी। कुछ दिनो तक तो नवद्वीप मे उन्होने भागवत-पाठ और भजन-कीर्तन मे दिन बिताया। उनकी तन्मयता दिन-दिन बढने लगी और केशव भारती से उन्होने सन्यास लिया।

असाधारण प्रभाव

चैतन्य ने धार्मिक व्याख्यान नही दिये, ग्रन्थो की रचना नही की। उनकी आत्म-विभोर दशा और प्रेम-विह्वल आँसुओ ने घर-घर, हृदय-हृदय मे प्रेम के पावन सन्देश को पहुँचा दिया। जैसा कि सन्त-चरित्र के साथ लोग अजीबो-गरीब करिश्मो के किस्से जोड दिया करते है, चैतन्य की जीवनी मे भी वैसे छूमन्तर के खेल बहुत बताये गए है, उनके तथ्यो की ऐतिहासिकता नही है। उनका प्रभाव बे-शक असाधारण बढा और जीते-जी ही वे देवता की तरह पूजे गए। छः वर्षों तक तो उन्होने तीर्थाटन किया और जीवन के बाकी अठारह वर्ष वे पुरी छोडकर कही नही गये। अन्तिम दिनो मे तो वे बराबर बे-सुध-से ही रहते थे—उनके कानो मे जोर-जोर से पद गाये जाने पर भी उन्हे कभी-कभी होश हो आता था और तन्मयता के आँसू आँखो से जारी रहते थे। इस तन्मयता ने वह गजब का जादू कर दिखाया कि भक्ति की एक बाट-सी आ गई। बगाल के गाँव-घर मृदग-मजीरे और पद-गायन के स्वर से गूँज उठे। चैतन्य के अनेक सुयोग्य शिष्य हो गए।

विभिन्न वैष्णव कवि

पद-गायन की ही धूम नही पड गई, पद-रचनाओ की भी बाढ जो आई, तो वह अठारहवी सदी तक समान रूप से बहती गई। उस काल के प्रमुख पदकर्ताओ मे, जिन्हे महाजन भी कहते है, चार-पाँच बहुत ही लोकप्रिय हुए और उनके पदो का साहित्यिक मूल्य भी सचमुच उच्चकोटि का है। ऐसे कवि बलरामदास, ज्ञानदास, गोविन्ददास है।

गोविन्ददास और उनकी कृतियाँ

गोविन्ददास और बलरामदास नाम के कई पदकार हो गए है और अब पदो द्वारा व्यक्ति-विशेष की निश्चित पहचान कठिन हो गई है। ऐतिहासिक विवाद की गुञ्जाइश काफी बढ गई है। बलरामदास वात्सल्य रस के मँजे हुए कवि थे। गोविन्ददास को किसी ने बंगाली, तो किसी ने मैथिली कीवि कहा। कुछ लोगो ने यह कहा कि गोविन्ददास दो कवि हुए, एक बगाल

और एक मैथिली। जो हो, गोविन्ददास के तीन ग्रन्थ मिलते है—'प्रेम-विलास', 'भक्ति रत्नाकर', 'भक्तमाल'। एक पद का नमूना देखिये :

झर झर जलधर धार।
झझा पवन विथार॥
झलकत दामिनी माला।
झामरि मैगेल बाला॥
झूठ कि कहब कनाइ।
झुरत तुया बिन राइ॥
झी-झीं झकर राति।
झॅक सहने नहि घाति॥
झुमरि दादुरि बोल।
झुलत मदन हिल्लोल॥
झटकि चलत धनि पाश।
झगडत गोबिददास॥

ज्ञानदास के पद

ज्ञानदास ने बगला और ब्रज बोली, दोनो मे समान कुशलता से कविता लिखी है। एक पूर्वराग की कुछेक पक्तियाँ नमूने के तौर पर दी जाती है। राधा कहती है, मैने स्वप्न मे देखा, मेरा प्रियतम सिरहाने आ बैठा है और मेरी नकबेसर छूकर मन्द-मन्द मुस्करा रहा है। सावन की रात। बादल गरज रहे है—रिमझिम पानी पड रहा है—मै मगन-मन पलग पर लेटी हूँ, बदन की साडी सरक गई है, अपने-आपकी सुध नही है :

स्वपने देखिनु पराण-बन्धुया बसिया शियर पाशे।
नासार बेसर परश करिया ईषत मधुर हासे॥
रजनी श्रावण, घन घन गरजन, रिमझिम शबदे बरिषे।
पालके शयन रगे विगलित चीर अगे नींद नाइ मनेर हरिषे॥

जीवनी-काव्य की नई धारा

जीवनी-काव्य की नई धारा बगला मे यही से शुरू हुई और उसे

सच्चे साहित्य की मर्यादा मिली। पिछले दिनो का साहित्य लोक-कथा और गाथाओ, 'रामायण' और 'महाभारत' की कहानियो तक ही सीमित था। यहाँ आकर साहित्य ने प्रकृत जीवन-कथा को सग्मग्री रूप मे अपनाया। चैतन्य के जीवन-सम्बन्धी अनेक उल्लेख-योग्य काव्यो की रचना की गई। इन जीवनीकारो मे प्रमुख कवि है—मुरारिगुप्त, वृन्दावनदास, लोचनदास, कृष्णदास कविराज, जयानन्द आदि।

चैतन्य-जीवनी

चैतन्य पर पहला काव्य वृन्दावनदास का 'चैतन्य भागवत' है, जो या तो महाप्रभु के रहते ही लिखा गया है या उनकी मृत्यु के आस-पास ही। इसमे तत्कालीन नवद्वीप तथा चैतन्य के आरम्भिक जीवन की कहानी अच्छे ढग से लिखी गई है। वर्द्धमान जिले के लोचनदास का 'चैतन्य मगल' मौलिकता की दृष्टि से महत्त्व का नही है। वह मुरारिगुप्त के 'श्रीकृष्ण-चैतन्य चरितामृत' का एक प्रकार से अनुवाद है। वह चूँकि पाचाली ढग की रचना है, इसलिए लोगो मे उसका अच्छा आदर रहा। वर्द्धमान जिले के दूसरे कवि कृष्णदास कविराज की 'चैतन्य चरितामृत' एक श्रेष्ठ पुस्तक है। कवि एक विद्वान् और वैसे ही रसवेत्ता थे। चैतन्य के अन्तिम जीवन को उन्होने निकट से देखा था, इसलिए उसके उस अश मे बहुत-सी ऐसी ज्ञातव्य बाते है, जो और ग्रन्थो मे नही पाई जाती। आध्यात्मिकता और दार्शनिकता के लिए भी इस ग्रन्थ का लोगो मे समादर रहा है। कवि जयानन्द ने भी अपने 'चैतन्य मगल' को पाचाली के ढग पर लिखा है। इसमे तथ्यो की मौलिकता या काव्यत्व का उत्कर्ष तो नही है, पर यह सहज-सरल है और जन-साधारण आसानी से इसे गा सकते है। सत्रहवी और अठारहवी सदी मे भी चैतन्य-जीवनियाँ कुछ-न-कुछ लिखी जाती रही।

गोविन्ददास का कडचा

इस सम्बन्ध की एक और निहायत छोटी-सी पुस्तक का उल्लेख करना जरूरी है, वह है 'गोविन्ददास का कडचा'। कहा जाता है, गोविन्ददास

यो कोई खास पढे-लिखे व्यक्ति न थे, पर दो साल तक उन्होने महाप्रभु के निकट-से-निकट रहने का अवसर पाया था। दिन-रात कभी उनसे अलग नही हुए। फलस्वरूप उनके दक्षिण-भ्रमण के बारे मे इसमे कुछ ऐसे मूल्यवान तथ्य मिलते है, जो अन्यत्र दुर्लभ हे। बाकी जिन लोगो ने जीवनियाँ लिखी है, सुने हुए तथ्यो के आधार पर। उनमे इसकी यथातथ्यता नही आ पाई है। गोविन्द जाति के कमार और वर्द्धमान के कचन नगर के निवासी थे। उनकी पत्नी उठते-बैठते उन्हे मूर्ख और निर्गुण कहकर झिडकियाँ देती थी। दु.ख और अफसोस से एक दिन वे निकल भागे थे और चैतन्य के सेवक बन गए थे। 'कडचा' ऐतिहासिक और भौगोलिक तथ्यो का एक सिलसिलेवार लेखा है। अब कई विद्वानो को इसमे शका होने लगी है कि वह ग्रन्थ खाटी और निखालिश है। किन्तु यदि सचमुच ही उसमे मिलावट न हो, तो वह एक मूल्यवान पोथी है।

अन्यान्य रचनाएँ

अद्वैताचार्य की भी कुछ अच्छी जीवनियाँ लिखी गई। 'भक्तमाल', 'भक्ति रत्नावली', 'कृष्ण मगल' आदि के अनुवाद भी होते रहे। 'मनसा-मगल' और 'चण्डी-मगल' की शाखा भी अपने ढग से फलती-फूलती रही। 'रामायण', 'महाभारत' और पौराणिक उपाख्यानो पर भी तरह-तरह के काव्य लिखे जाते रहे। यह क्रम अठारहवी सदी के उत्तरार्द्ध तक चलता रहा। जिनमे से विस्तार मे न जाकर हम यहाँ उल्लेखनीय बातो की ही चर्चा करेगे।

इस युग के 'मनसा-मगल'

जो बाद के 'मनसा-मगल'-काव्य मिले है, उनके कवियो मे वशीवादन, नारायणदेव और क्षेमानन्द केतकादास के नाम प्रमुख रूप से लिये जा सकते है। वशीवादन जिला मैमनसिह के रहने वाले थे। थे तो वे सस्कृत के पण्डित, पर बडे ही गरीब थे। मनसा की पाचाली गाकर ही वे अपनी जीविका कमाते थे। सस्कृत की दुरूहता से उन्होने अपने काव्य को अछूता

रखा है। वहाँ की एक ग्राम-गाथा से उनकी विदुषी पुत्री चन्द्रावती का पता चलता है। उसकी शादी किसी से तै हुई थी, जो आगे चलकर नट गया। चन्द्रावती ने फिर आजन्म विवाह ही नही किया। 'मनसा मगल' लिखने मे चन्द्रावती ने पिता को मदद भी दी थी।

नारायणदेव भी मैमनसिह इलाके के रहने वाले थे। उनका पूरा नाम रामनारायणदेव था और उन्हे 'सुकवि वल्लभ' की उपाधि मिली थी। इनकी एक दूसरी कृति भी पाई जाती है—'कालिका पुराण'।

केतकादास-क्षेमानन्द

केतकादास-क्षेमानन्द के 'मनसा मगल' मे २६०० श्लोक है। नाम से लगता है, जैसे ये अलग-अलग दो व्यक्ति हो। उनके जो ६६ पद पाये गए है, उनमे मे ४० मे तो क्षेमानन्द की भणिता है, बाकी २६ मे केतकादास की। दोनो तरह के पदो मे रस की विभिन्नता भी है—एक मे करुण-रस है, दूसरे मे हास्य। फिर भी दोनो एक ही व्यक्ति है, ऐसा पता चलता है। लगता है, नाम उनका क्षेमानन्द था और केतकादास उनका उपनाम था। केतका मनसा देवी का नाम है, उन्हीका दास। एक पद मे ऐसा लिखा है :

> **वनेर भीतर नाम मनसा कुमारी।**
> **केचा पाते जन्म हैल केतका सुन्दरी॥**

'मनसा-मंगल' के अन्य कवि

इन सबके अतिरिक्त अठारहवी सदी मे उत्तर और पूर्व-बगाल मे कुछ मनसा-मगल-काव्य रचे गए। सन् १७०३ मे चटगाँव के कवि रामजीवन विद्याभूषण ने व्रत-कथा-जैसा छोटा-सा मनसा-मगल-काव्य लिखा। 'द्विज' रसिक का 'मनसा-मगल' लेकिन एक बडा-सा काव्य है। सन् १७४४ मे जीवनकृष्ण मैत्र ने मनसा की पाचाली लिखी। कवि षष्ठीवर और द्विज जानकीराम के मनसा-मगल का भी नाम लिया जा सकता है।

'चडी-मगल' और उसके कवि

'चण्डी-मंगल' पर लिखे काव्य तो सोलहवी सदी के पाये जाते है, पर

यह कथा-परम्परा पन्द्रहवी सदी के अन्तिम ओर प्रचलित थी। कहते है, इस उपाख्यान की रचना द्विज जनार्दन ने की थी। यह कथा पुराण आदि मे नही पाई जाती। यह एक लोक-रचना है और व्रत-कथा के रूप मे लोगो मे चलती रही है। चडी तो देवी थी। कल्याण और उन्नति-कामना मे जिस प्रकार चिरपरिचित भगवान् को लोगो ने सर्वसुलभ सत्यनारायण का रूप दिया, उसी प्रकार चडी भी सम्भवत मगलचडी हो गई। इस पर बगाल मे अनेक काव्य रचे गए।

चडी मगल की कहानी

काव्य की कथावस्तु दो तरह की पाई जाती है। दोनो कहानियाँ यहाँ सक्षेप मे दी जाती है—

एक

लोमस मुनि समुद्र के किनारे तप कर रहे थे। इन्द्र के बेटे नीलाम्बर ने उनसे कहा, 'मुनिवर, इस धूप-सरदी मे जो तप करते है, उससे एक झोपडा डाल लेना अच्छा नही होता क्या ?' लोमस ने कहा, 'घर ? इस नश्वर जीवन के लिए घर क्या बाँधा जाय ? नीलाम्बर ने पूछा, आपकी उमर क्या हुई होगी ?' लोमस ने कहा, 'यह कहना तो कठिन है। तब यही समझो, एक-एक इन्द्र जब मरते है, तब मेरा एक रोआँ झडता है। और ये सारे रोएँ जिस दिन झड जायँगे, मै भी चल बसूँगा।' तब नीलाम्बर ने पूछा, 'इतने दिनो मे तो आप मर जायँगे आखिर अमर यहाँ कौन है ?' लोमश ने बताया—'अमर है शिव।'

सो शिव की ही सेवा मे नीलाम्बर जुट पडे। पूजा के फूलो मे कही एक कीडा छिपा था। उसने शिव को काट खाया। बिगडकर शिव ने नीलाम्बर को शाप दिया, 'पृथ्वी पर पैदा हो।' नीलाम्बर एक व्याध के घर आ जन्मे। नाम हुआ कालकेतु। कालकेतु की स्त्री थी फुल्लरा। कष्ट मे दिन कटते थे। वह शिकार मार लाता, फुल्लरा सिर पर उठाकर बेच लाती। इधर पशुओ ने चडी के पास फरियाद पहुँचाई—'इस कालकेतु व्याध के मारे हमारी खैर नही। उस व्याध से हमे बचायँ।' चडी ने पशुओ को अभय

दिया। सो उस दिन कालकेतु तमाम जगल छान गया, शिकार हाथ नही आया। आते वक्त वह एक सुनहली गोह को जिन्दा पकड लाया। स्त्री घर नही थी। गोह को एक खम्भे मे बॉधकर वह स्त्री को ढूँढने गया। इतने मे गोह एक सोलह साल की सुन्दरी बनकर बैठ रही। फुल्लरा जो आई, तो अवाक्, एक सुनहला चॉद दरवाजे पर ! पूछा, 'आप ?' युवती बोली, 'मै एक अभागिन हूँ। मेरा पति बूढा है—तिस पर एक सौत। रात-दिन की खटपट से मै जान लेकर भाग निकली हूँ।' फुल्लरा ने उसे लाख समझाया, 'जो भी हो, स्त्री के लिए पति का घर ही सर्वस्व है।' वह न डिगी। कालकेतु आया तो वह भी बडे असमजस मे पड गया। उसने भी उसे बहुतेरा समझाया, उपदेश दिये। इस पर देवी परम प्रसन्न होकर प्रकट हो गई और कालकेतु को एक अगूठी दी। उस अगूठी से जादू हो गया। कालकेतु राजा हो गया।

इलाके के तमाम जगल कटवाकर उसने नया राज बसाया। उस राज्य मे बहुतेरे लोग आ बसे। बहुतो मे एक धूर्त शिरोमणि भॉडदत्त भी आ पहुँचा। उसकी काली करतूतो से कालकेतु ने उसे राज्य से निकाल बाहर किया। फिर क्या था, उस धूर्त ने दूसरे राजा से कालकेतु पर चढाई करवा दी। कालकेतु बन्दी हुआ। देवी चडी की कृपा से वह यम-यातना से मुक्त हुआ। सक्षेप मे यही पहली कहानी है।

दो

दूसरी कहानी उज्जयिनी के धनपति वणिक की है। उसकी पत्नी थी लहना। वह निस्सन्तान थी। धनपति ने खुल्लना से अपनी दूसरी शादी कर ली। वह रत्नमाला अप्सरा थी, जो शाप से नारी बन गई थी। लहना ने सौत को अपार कष्ट दिये। वणिक एक बार जब बाहर गया, खुल्लना की सौत ने बडी दुर्गत की। धनपति ने लौटकर फिर सँभाला। खुल्लना गर्भवती थी कि धनपति को सिहल जाना पडा। राह मे समुद्र मे उसने एक अजीब घटना देखी। कमल पर एक सुन्दरी बैठी है और बार-बार एक हाथी को निगलती-उगलती है। यह घटना धनपति ने सिहल के राजा से

कही। सिंहल के राजा ने उसे झूठ कहकर खिल्ली उडाई। धनपति ने उसे आँखो दिखाने की प्रतिज्ञा की। पूरी न कर सका और वहाँ कैद मे सडता रहा।

इधर खुल्लना के सुन्दर लडका हुआ—श्रीमन्त। बडे होने पर उसे खोये पिता को लौटा लाने की धुन सवार हुई। उसने भी सिंहल की यात्रा की और रास्ते मे वही घटना देखी। वह भी सिंहल-नरेश को यह घटना प्रत्यक्ष न दिखा सका। उसे प्राण-दण्ड की आज्ञा हुई। अब चण्डी देवी को दया आई। उसने राजा से सबको छोड देने को कहा। राजा ने एक न सुनी। फिर क्या था, भूत-प्रेतो की सेना सिंहल पर चट दौडी। राजा हार गए और उसने सबको छोड दिया। श्रीमन्त से उसने अपनी बेटी का ब्याह कर दिया। सब लोग लौटे और सुख से रहने लगे।

कवि कंकण मुकुन्दराम

'चण्डी मगल' के सबसे प्रसिद्ध कवि कवि कंकण मुकुन्दराम चक्रवर्त्ती ही हुए। माधवाचार्य का 'चण्डी मगल' उनसे पहले का है और सम्भवतः १५८० ई० मे लिखा गया। किन्तु भाषा, कवित्व-शक्ति और चरित्र-वर्णन मे कवि कंकण को कोई नही लगता। बाद मे भी इस विषय के जितने काव्य लिखे गए, फीके रहे। कवि कंकण की शैली यथार्थवादी है और उनके काव्य मे १६वी सदी के बगाल का जीता-जागता चित्र मिलता है। डॉ० ग्रियर्सन ने तो उनकी कविता के लिए लिखा है, 'वह हृदय से निकलती है, मस्तिष्क से नही।' तत्कालीन जातीय जीवन की स्थिति, दु:ख-दर्द आदि सभी इनके वर्णन से जीवन्त हो उठे है।

मुसलमानी शासन का उत्पीडन

बगला पर मुसलमानो का अशेष ऋण है। हुसैनशाह के शासन-काल मे इतिहास को एक निर्मल अध्याय मिला, यह भी ठीक है। किन्तु मुस्लिम राजत्व-काल मे हिन्दुओ पर अत्याचार-उत्पीडन भी कम नही हुए, जिससे समाज एक आतक से त्रस्त था। कर की अदायगी मे बडी कडाई बरती जाती

थी। कानून में काफिरो पर मुस्लिम दीवान को जुल्म ढाने का साफ अधिकार दिया गया था। कर न चुकाने पर हिन्दुओ को मुँह खोलकर मुसलमान से उसमे थुकवा लेने की तम्बीह थी। ऐसे ही एक जुल्मी डिहिदार महमूद शरीफ का जिक्र कवि ककण ने किया है :

धन्य राजा मानसिह चण्डीपदाबुजे भृङ्ग
गौड बग उत्कल अधीप
अधर्मी राजार काले प्रजार पापेर फले
खिलात पाय मामूद शरीफ ॥

अर्थात् आज के राजा मानसिह धन्य है कि उन्होने गौड, बग और उत्कल की प्रजा को सुख से रखा है। विधर्मी मुसलमान राजा (सम्भवतः हुसैन कुली खॉ या मुजफ्फर खॉ) के समय प्रजा पर महमूद शरीफ ने तो बेहद जुल्म ढाये।

'चण्डी मगल' के भॉडू दत्त का चरित्र खूब निखरा है। वह धूर्तता की एक जीवित मूर्ति है—दाव-पेच मे शकुनि का समकोटिक।

कृष्ण मगल काव्य

'मनसा मगल' और 'चण्डी मगल' के समान सत्रहवी-अठारहवी सदी मे 'कृष्ण मगल' काव्य भी कई लिखे गए। जिनमे से दुखी श्यामदास का 'गोविन्द मगल', द्विज हरिदास का 'मुकुन्द मगल', अभिराम का 'गोविन्द विजय', भवानन्द का 'हरिवश' सत्रहवी सदी मे उल्लेख-योग्य है। इन दो सदियो मे महाभारत-काव्य भी कई लिखे गए। द्विज हरिदास, घनश्यामदास, कृष्णानन्द बसु ने केवल अश्वमेध पर्व लिखा। विशारद कवि ने वन और विराट् पर्व लिखा। अठारहवी सदी मे कविचन्द्र चक्रवर्त्ती, षष्ठीवरसेन और त्रिलोचन चक्रवर्त्ती ने पूरे महाभारत की रचना की। महाभारत के कवियो मे सबसे अधिक प्रसिद्ध और लोकप्रिय काशीराम दास हुए। इन्होने अपना काव्य सत्रहवी सदी के आरम्भ मे लिखा था।

महाभारत की लोकप्रियता

रामायण के लिए जो यश बगला मे कृत्तिवास को मिला, महाभारत

के लिए वही काशीराम दास को मिला। शुरू से आज तक इसका समान आदर है और अमीर-गरीब सबमे इसकी चर्चा है। जहाँ जाइये, उनकी निम्न पक्तियाँ लोगो को कण्ठ है

महाभारतेरि कथा अमृत समान।
काशीरामदास कहे शुने पुण्यवान॥

यह ग्रन्थ तब से बगाल मे नैतिक शिक्षा के गुरु का कार्य करता आ रहा है। पुस्तक मे भाषा-विषयक युग-सन्धि का स्वरूप है। सस्कृत की समास-बहुल अनुप्रासिक शब्द-योजना का मोह जहाँ-तहाँ है, पर उसकी सादगी और सरल शक्तिमत्ता की ओर आग्रह अधिक है।

अभिनव भाव-धारा

साधना के इन प्रयासो मे लकीर की फकीरी ही रही। घूम-फिरकर सब कवि विषय-वस्तु के उसी सीमित दायरे मे घूमते रहे। सत्रहवी सदी के अन्त की ओर एक कवि मे हमे विषय-वस्तु की मौलिक अन्तर्दृष्टि का पता चलता है। ये कवि थे कृष्णरामदास। ये कलकत्ता के बेलघरिया के पास निमता के रहने वाले थे और जाति के कायस्थ थे। इनकी कवित्व-शक्ति तो वैसी पैनी नही थी, पर सूझ नई थी।

'षष्ठी मगल' और 'राय मगल'

इन्होने तीन काव्यो की रचना की। 'षष्ठी मगल', 'राय मगल' और 'कालिका पुराण'। 'षष्ठी मगल' एक व्रत-कथा है। बगाल मे पुत्र के कल्याण के लिए माताएँ इस व्रत का पालन करती है। 'राय मगल' मे सुन्दर वन के बाघ-देवता दक्षिणराय का माहात्म्य है। दक्षिणराय पर इनके पहले एक कवि माधवाचार्य ने भी कुछ लिखा था, कृष्णराम ने ही इसका उल्लेख किया है। 'राय मगल' मे कालूराय तथा पीर बडे खाँ गाजी की कहानी भी प्रसगवश आई है, जिनके लोक-गीत मैमनसिह मे आज भी प्रचलित है। 'राय मगल' मे देवी-माहात्म्य के बहाने विद्यासुन्दर की कहानी कही गई है, जिसका प्रचार अठारहवी सदी मे पश्चिमी बगाल मे बेहद

बढ गया था। कृष्णदास के काव्य मे ही जैसे उसकी प्राथमिक भूमिका थी।

'विद्या सुन्दर'-काव्य और उसके कवि

अठारहवी सदी मे 'विद्या सुन्दर' काव्य लिखने वाले सात कवियो के नाम लिये जा सकते है, बलराम कविशेखर, भारतचन्द्र राय गुणाकर, रामप्रसाद सेन कविरंजन, आचार्य कविरत्न राधाकान्त, मिश्र, कवीन्द्र चक्रवर्त्ती और प्राणराम चक्रवर्त्ती। इन सबमे काव्य-कृतित्व मे भारतचन्द्र और रामप्रसाद ही निस्सन्देह श्रेष्ठ है।

'विद्या सुन्दर' कथा का आधार

'विद्या सुन्दर' की मूल कहानी विल्हण-कृत 'चौर पचाशिका' से बहुत-कुछ मिलती है। ऐसा खयाल किया जाता है कि वही कविता बाद मे सस्कृत-नाटक के रूप मे ढाल दी गई। वररुचि के नाम से भी एक 'विद्या सुन्दर' मिलता है, किन्तु यह इसलिए नया जान पडता है क्योकि पिछले उपाख्यान मे कही देवी-देवता का नाम-गन्ध नही मिलता। लोक-ग्राह्य बनाने के लिए ही सम्भवत. उसे धार्मिकता का जामा पहनाया गया। किन्तु कहानी से यह स्पष्ट होता है कि उस पर सम्राटो और नवाबी दरबारो की विलासिता का प्रभाव पडा है। तत्कालीन समाज की विकृत रुचि का परिचय इसमे साफ है।

'विद्या सुन्दर' की कहानी

कहानी सक्षेप मे यो है, सुन्दर नाम का एक विदेशी राजकुमार है। वह मालिनी को दूती बनाकर राजकुमारी विद्या पर प्रेम का जाल फैलाता है। विद्या की माता पर यह राज जाहिर हो जाता है। वह राजा के कानो मे यह खबर पहुँचा देती है। राजा ने राजकुमार को पकडवा मँगाया। उसे प्राण-दण्ड की सजा सुनाई गई। किन्तु देवी कालिका ने इस सकट को मेट दिया। वह राजा के सामने प्रकट हुई। सुन्दर को बचाया। राजकुमारी से उसका विवाह कर दिया गया।

भारतचन्द्र का 'अन्नदा-मगल'

देवी का अश जोडकर किस्से पर धामिक कलई चढाने की कोशिश की

गई है, पर साग ढॉके मछली नही छिपाई जा सकती। शुरू तरफ की प्रेम-कहानी, उसमे प्रेम की डोरी बिछाकर शिकार फॅसाने वाली दूती हीरा और विदु ब्राह्मणी, दाई सोनामुखी ये सब चरित्र पतनोन्मुख समाज का सकेत देते है। इस कहानी के यशस्वी कवि भारतचन्द्र है और उनके काव्य का नाम 'अन्नदा मगल' है। यह एक काव्य है, किन्तु 'मगल-काव्य नही है। गो कि उसमे की ऐसी पक्तियाँ .

कालि कालि कालि कालि कालिके।
खण्डमुण्डि मुण्डखण्डि खण्डमुण्ड मालिके ॥

भ्रमवश उसे पूजा-मडप तक भी ले गई है।

राजा कृष्णचन्द्र और उनका दरबार

भारतचन्द्र नवद्वीप के राजा कृष्णचन्द्र के दरबार मे थे। विद्यानुराग और शासन-कार्य मे राजा की सुख्याति जरूर थी, उनके दरबार मे विश्राम खॉ-जैसे गायक, भारतचन्द्र जैसे कवि और गदाधर तर्कालकार-जैसे पुराण-पाठी थे। प्रदेश मे इन कलावन्तो का यश गूँज उठा था, मगर यह विलास समय को देखते हुए कुछ उचित नही था। उन्हीके समय बगाल वर्गी के हमलो से अस्त-व्यस्त था। उससे छुटकारा मिला तो महामारी के कराल गाल मे आबादी का लगभग तीसरा हिस्सा जाता रहा। फिर डकैतो के चलते कोई पचास हजार घर और पॉच सौ आदमी जल मरे। किन्तु इन सबके बावजूद राजा की आमोदप्रियता चलती रही—जैसे रोम जल रहा हो और नीरो की बेला बज रही हो। गोपाल भॉड-जैसे मशहूर विदूषक इन्हीकी सभा की शोभा थे। इसलिए तत्कालीन साहित्य से उस विलासप्रियता और कुरुचि की बू आती है।

भारतचन्द्र की भाषा

फिर भी मानना होगा कि भारतचन्द्र का काव्य बडा लोकप्रिय हुआ। इस लोकप्रियता का सारा श्रेय उनकी शैली को है। शब्दो की सुष्ठु योजना, वर्णन और प्रवाह द्वारा कवि ने अपनी अद्भुत काव्य-क्षमता का परिचय दिया है।

कवि रामप्रसाद और 'कालिका मगल'

'कालिका मगल' के दूसरे श्रेष्ठ कवि रामप्रसाद है—जो कवित्व-निपुणता मे तो भारतचन्द्र के आगे नही टिक सकते, किन्तु जहॉ तक चरित्र-चित्रण का सवाल है, रामप्रसाद का चरित्र-चित्रण निस्सदेह श्रेष्ठ है। इन्हे कवि रजन की उपाधि मिली थी। और यह उपाधि भी राजा कृष्णचन्द्र ने ही दी थी। किन्तु बहुत आग्रह के बावजूद भी कवि उनके दरबार मे नही गये। ऐसा कहा जाता है कि ये किसी जमीदार के पटवारी थे। काम-काज के वक्त कभी-कभी सरस्वती जब सवार हो जाती, ये हिसाब-बही मे गीत लिख रखते। एक दिन खुद जमीदार साहब सिरिश्ते के निरीक्षण को पहुँचे। खाता-बही उलटते समय किसी पन्ने पर उन्हे ये पक्तियॉ मिल गई .

आमाय दे मा तसिलदारी ।
आमि नेमकहाराम नइ शकरी ॥

श्यामा सगीत

जमींदार साहब ने रामप्रसाद को ३० रुपये की पेशन देकर छुट्टी दी कि अब से घर बैठकर 'श्यामा सगीत' की ही रचना करो। सच पूछिये तो कवि का कृतित्व उनके 'विद्या सुन्दर' काव्य मे नही है, है 'श्यामा-सगीत' मे। आज भी उनके वे आध्यात्मिक गीत सारे बगाल मे उसी आदर और प्रेम से गाये जाते है।

आजु गुसाई की पैरोडी

उनकी उस लोकप्रियता से जलने वाले भी एक जीव उस समय थे। नाम था आजु गुसाई। वे रामप्रसाद के गीतो की कभी-कभी पैरोडी बनाते थे। जैसे, एक गीत की पैरोडी है—कवि का गीत है

ए ससार धोकार टाटी ।
ओ भाइ आनन्द-बाजार लुटि ।
ओरे चिति वह्नि वायु जल शून्ये अति परिपाटी ।

आजु गोसाई ने इसको यो लिखा .

एइ ससारे रसेर कुटी ।
खाइ-दाइ राजत्वे बसे मजा लुटि ।
ओहे सेने नाहि ज्ञान बुझ तुमि मोटा मुटी ।
ओरे भाइ, बन्धु दारा सुत पिढि पेते देय दूधेर बाटी ॥

यानी ससार मे रस का मजा है, खा-पीकर राज-पाट पर मजा लूटो । ओ सेन (यानी रामप्रसाद), इतनी-सी बात तुम्हारी समझ नही आती । भैया, दोस्त-अहबाब, स्त्री-बेटे सब आसन पर बिठालकर कटोरे मे दूध पीने को देते है ।

गीत-परम्परा का प्रचलन

जो हो, रामप्रसाद के 'श्यामा-सगीत' ने लोकप्रियता जो पाई सो पाई, ऐसे गीत-धारा की प्रेरणा भी उसीसे जागी और बाद मे उससे बाउल-सगीत तथा अन्यान्य फुटकल गीत बगला मे खूब लिखे गए ।

बगाल के कवियाल

कवियाल बगला की एक और खास चीज है जो साधारणतया कवि-सगीत के नाम से ही परिचित है। इस कोटि के ग्रामीण कवि साधारणतया ज्यादा पढे-लिखे नही होते थे । इनकी गोष्ठियाँ होती थीं और दो-चार ऐसे कवियो मे होड होती थी, जैसा कि बनारस मे कजरी या लावनी की होती है । श्री ताराशकर वन्द्योपाध्याय ने वैसे कवियाल के जीवन पर अपना प्रसिद्ध उपन्यास 'कवि' लिखा है । वैसे कवियालो मे गोजला गुई, रासू, नृसिह, हरि ठाकुर, राम बसु आदि बहुत अच्छे हुए । गोजला गुई तो बहुत ही पुराने कवियाल है—उनमे बारे मे ईश्वरचन्द्र गुप्त ने लिखा है कि वे कोई डेढ सौ साल पहले हुए ।

कवियाल एण्टोनी साहब

मजे की बात है कि ऐसे ही कवियालो मे एक पोर्चुगीज एण्टोनी साहब भी हुए । वे धोती-कुर्ते मे मजमे मे आते थे । कहते है, एक ब्राह्मणी के प्रेम मे पडकर वे हिन्दू-से हो आए थे । एक मजमे मे ठाकुरसिह कवि-

याल से उनकी होड हो गई। ठाकुरसिह ने एण्टोनी को भरी भीड मे ललकारा .

बलो हे एण्टुनि आमि एकटिक कथा जानते चाइ।
एसे ए देशे ए वेशे तोमार गाये केनो कुर्त्ति नाइ॥

यानी, साहब एक बात जानना चाहूँगा, आपके बदन पर कुर्ता क्यो नही है।

साहब भी ऐसे-वैसे कवियाल नही थे। छूटते ही कहा, 'बगाल मे बगाली बनकर मजे मे हूँ। ठाकुरसिह के बाप का दामाद बनकर कुर्ता-टोपी को मैने तिलाजलि दी है'

एइ बागालाय बागालीर वेशे आनन्दे आछि।
होये ठाकुर सिहेर बापेर जामाइ, कुर्त्ति टुपि छेडेछि॥

कवियालो मे एण्टोनी ने खासी इज्जत कमाई थी। वे होली-दशहरा मे भी भाग लेते थे और काली-दुर्गा की कविता भी कहते थे। जैसे .

जय योगेन्द्र जाया, महामाया, महिमा असीम तोमार।
एक बार दुर्गा दुर्गा दुर्गा बोले जे डाके तोमाय।
तुमि करो तारे भवसिधु पार। आदि।

: ६ :

आधुनिक काल

गद्य-युग का सूत्रपात

साहित्य की वास्तविक सौभाग्य-सूचना तो गद्य-रचना के सूत्रपात से होती है और वह युगारम्भ बगला मे अठारहवी तथा उन्नीसवी सदी के सधि-काल से होता है। खोज-ढूँढकर नाम लेने को गद्य का नमूना पहले का नही मिल सकता, ऐसी बात नही। ऐतिहासिक जिज्ञासा वाले लोग बहुत पहले से भी उसका पता-ठिकाना देते है, पर हकीकत मे वह गद्य क्या है, गद्याभास कह लीजिये।

पुराने गद्य

रमाइ पण्डित के 'शून्य पुराण' और 'देवडामर तन्त्र' मे मे गद्य के आशिक नमूने भी लोग पेश करते है, जब कि सम्पूर्ण पुस्तक काव्य है। उसीके कही-कही जो ऊबड-खाबड और कच्चे अश है, उन्हे गद्य प्रमाणित करने की एक चेष्टा है। चडीदास-कृत किसी एक 'चैतन्य-रूप-प्राप्ति' गद्य-पुस्तक का नाम भी लिया जाता है। हॉ, 'भाषा-परिच्छेद', 'व्यवस्था-तत्त्व', गोस्वामी-कृत 'कारिका' आदि मे प्रारम्भिक गद्य के वैसे नमूने मिलते है। अठारहवी सदी के बीचो बीच शिक्षार्थियो के लिए पण्डितो ने स्मृति और न्याय के कुछ ग्रन्था का बगला-अनुवाद किया था, वैद्यक की भी कुछ पुस्तके

भाषा मे अनूदित हुई थी किन्तु वे सहज प्रयास थे, उनमे उस ठोस और मजबूत नीव का परिचय नही था, जिस पर कि आज का उन्नत साहित्य खडा है। वैसा आभास तो ईस्ट-इडिया कम्पनी की सत्ता बगाल मे दृढ होने पर ही मिला।

अग्रेजो का आगमन और सत्ता-प्राप्ति

बगाल मे अग्रेजो का आगमन लगभग १६२० ई० मे ही हो गया था। गोविन्दपुर और सुतानटी मे जब उन्होने अड्डा जमाया, तो बगाली उनके पास भी नही फटकते थे। पलासी की ऐतिहासिक लडाई के बाद सन् १७५७ मे कम्पनी को कर वसूलने की जिम्मेदारी दी गई। थोडे ही अरसे मे उसकी शक्ति ने वह गुल खिलाया कि राज-शक्ति पर अधिकार करके वह प्रदेश का शासन-भार सँभाल बैठी। अब कामो की सहूलियत के लिए स्थानीय भाषा की जानकारी और व्यवहार आवश्यक हो गया और इस जरूरत ने भाषा की श्री-वृद्धि मे बडी मदद पहुँचाई। साहित्य तक तो तब बात नही पहुँच पाई, लेकिन आईन-कानून, दस्तावेज, खत-किताबत मे उसका व्यवहार बढ चला। किन्तु मुद्रण के अभाव मे उसकी गति बढ सकने की सम्भावना न थी।

बगला-टाइप का जन्म और पहली छपी पुस्तक

भाग्य से इसी समय कम्पनी के एक कर्मचारी चार्ल्स विल्किन्स ने श्रीरामपुर के एक कमार—पचानन कर्मकार—को टाइप बनाना सिखाया। सन् १७७८ मे उसी टाइप मे हुगली से पहली पुस्तक प्रकाशित हुई। पुस्तक हालहेड साहब-लिखित 'बगला-व्याकरण' थी। अठारहवी सदी के अन्त तक गद्य की एकाध पुस्तक और भी निकली, पर वह साहित्य कहाने योग्य न थी।

फोर्ट विलियम कालेज और कैरी साहब

गद्य-रचना का वास्तव मे श्रीगणेश हुआ सन् १८०० से, जब फोर्ट-विलियम कालेज की स्थापना हुई। यह कालेज कम्पनी के विलायती कर्म-

चारियों के लिए खोला गया था और उसमे पूर्वी-भाषा-विभाग के अध्यक्ष नियुक्त हुए थे विलियम कैरी। कैरी श्रीरामपुर मे एक पादरी थे। शिक्षा-कार्य शुरू करने मे सबसे बडी जो दिक्कत सामने आई, वह थी बगला-पुस्तकों की कमी। पिछला साहित्य तो काव्य ही था, जिसके द्वारा भाषा की व्यावहारिक शिक्षा नही दी जा सकती थी। कैरी साहब ने इसके लिए पण्डितो और मुन्शियो की बहाली की और जी-जान से इस कमी को यथा-शीघ्र दूर करने की कोशिश करने लगे।

कैरी की भाषा का नमूना

कैरी ने 'बाइबिल' के अनुवाद के सिवा कोश (तीन भागो मे), व्याकरण, इतिहासमाला, कथोपकथन भी लिखा। उनकी शैली बडी स्वाभाविक और सरल थी। न सस्कृत के शब्दाडम्बर का मोह, न अरबी-फारसी की ठूँस-ठॉस। जैसे

"एक चोर कोनो गृहस्थेर कतकगुलि द्रव्य चुरि करिया ग्रामोपान्ते जाइते छिल। सेइ समये एक कृषक ताहाके देखिया बोलिल, तुइ जे लोकेर द्रव्यादिलइया जाइते छिस, ताहाके फिरिया दे, नतुवा राज-निकट दण्ड होइबे।"

भाषा मे स्वाभाविकता का पुट है और तत्कालीन लेखको पर इसका खास असर पडा है।

कैरी के सहयोगी मृत्युञ्जय विद्यालकार

उनके सहयोगियों मे मृत्युञ्जय विद्यालकार प्रकाण्ड पण्डित और समर्थ लेखक थे। पहले उनकी भाषा समास-बहुल सस्कृत-प्रधान थी. **उच्छलिच्छि करात्यछे निर्झरान्तकणाच्छन्न होइय आसिते छे**। ऐसी भाषा लिखने वाले मृत्युञ्जय ने भी लिखना शुरू किया **"स्त्री कहिल, गुड होइलेइकि रॉधा हय? तैल नाइ, लून नाइ, चाउल नाइ, तरकारि पाति किछुइ नाइ। काठ-गुलि सकलि भिजा, बेसाति बा कि रूपे हय।"**

मृत्युञ्जय की पुस्तके

मृत्युञ्जय मेदिनीपुर के रहने वाले थे। उनकी लिखी हुई कई पुस्तके है,

जिनमे से 'बत्रिश सिहासन' (सिहासन बत्तीसी), 'राजावलि' और 'प्रबोध-चन्द्रिका' मुख्य है। 'राजावलि' सम्भवत. पहला भारत का इतिहास है। जो हो, छपा हुआ पहला मौलिक ग्रन्थ बगला मे रामराम वसु का 'प्रतापादित्य चरित्र' ही है। कैरी साहब के प्रोत्साहन से अनेक लोगो ने पुस्तके लिखी, जिनमे और जो उल्लेखनीय है, वे है, गोलोक शर्मा का 'हितोपदेश', रामराम वसु की दूसरी पुस्तक 'लिपिमाला', राजीवलोचन मुखोपाध्याय का 'महाराज कृष्णचन्द्र रायस्य चरित्रम्'।

पोर्तुगीज पादरियो के भी कुछ ग्रन्थ निकले थे, जो लगभग रोमन हरूफ मे ही थे। कानून की दो-चार पोथियाँ, बाइबिल का एकाध अनुवाद बगला-अक्षरो मे छपा था। कैरी, मार्शमैन आदि शिक्षा-प्रचारको की प्रेरणा से इस दिशा मे काम तो बहुत हुआ, पर उनकी न तो मौलिकता का महत्त्व था, न साहित्यिक मूल्य। या तो वे अनुवाद थे या फिर पाठ्य पुस्तके थी।

राजा राममोहन राय

अनुवादो की इस बाढ से साहित्य की निजस्व धारा को निकालकर प्राञ्जलता देने वाले पहले व्यक्ति थे राजा राममोहन राय। इन्हे जो आधुनिकता का अग्रदूत कहा गया है, सो ठीक ही है। उन्होने वेदान्त और शास्त्रो पर कई सुन्दर ग्रन्थ लिखे, एक व्याकरण भी लिखा था।

तत्कालीन पत्र-पत्रिकाएँ

इन सारी कोशिशो के बावजूद गद्य के प्रवाह मे न तो वह गति आ पाई, न विस्तार। लोक-रुचि ही उधर को न मुड सकी। पाठ्य-पुस्तको के प्रसार का एक तो दायरा ही बडा सॅकरा था, फिर ईसाइयो के नाम पर लोग नाक-भौ भी सिकोडते थे। इसी बीच कैरी साहब के उद्योग से सन् १८१८ मे एक मासिक पत्र निकला—'दिग्दर्शन'। पत्र अल्पायु हुआ। अकाल मृत्यु हुई। उसके बाद ही मार्शमैन के सम्पादकत्व मे 'समाचार-दर्पण' साप्ताहिक निकला। उसीके आस-पास श्री गगाकिशोर भट्टाचार्य का 'बगाल-

गजट' प्रकाशित हुआ। इन सामयिक पत्रो ने गद्य के लिए लोक-रुचि का निर्माण किया और उसके क्षेत्र को व्यापक बनाया। जो लोग 'ईसाईयत' की बू से भिनकते थे, वे भी 'समाचार दर्पण' की ओर आकर्षित हुए और भाषा तथा साहित्य के स्वरूप और सम्भावना से परिचित होने लगे। पत्रो के लिए बढते हुए क्षेत्र और मॉग से आशान्वित होकर बहुतो ने इसमे सहयोग दिया। दो-तीन साल के अन्दर-ही-अन्दर और कई ऐसे पत्र निकले, जिनमे से 'सवाद कौमुदी' और 'समाचार चन्द्रिका' प्रधान है।

सावादिकता और साहित्य-सृष्टि

सावादिकता साहित्य-सर्जना से एक अलग-सी चीज जरूर है, किन्तु ऐसे भी पत्रकार हुए है, जिन्होने साहित्य के मार्ग को प्रशस्त करने मे अपनी प्रतिभा के दान का भी सहयोग दिया है। 'समाचार चन्द्रिका' के सम्पादक भवानीचरण वद्योपाध्याय ने पत्रकारिता के अतिरिक्त पुस्तके भी कई लिखी। उनकी शैली तीखे व्यग्य से बडी जोरदार हो गई थी। उन्होने धनियो के दुराचार की बडी कडी आलोचना की। हास्य रस के वे अच्छे लेखक थे और गद्य-पद्य दोनो मे लिखते थे। अतएव उनमे प्राचीन पद्य और नये गद्य का बहुत अच्छा सामजस्य देखने को मिला।

ईश्वरचन्द्र गुप्त और उनकी कविता

इनसे भी अधिक सशक्त और समर्थ सावादिक श्री ईश्वरचन्द्र गुप्त हुए, जिनका बगला मे अच्छा स्थान है। उन्होने सस्कृत और बगला मे तो अच्छा लिखा ही है, थोडा-बहुत अग्रेजी मे भी लिखा है। उनके पत्र 'सवाद प्रभाकर' की बगला मे बहुत बडी देन है। उस पत्र से अनेक लेखक-कवि प्रोत्साहन पाकर सामने आये। ईश्वरचन्द्र ने दो युगो को जोडने की कडी का काम किया। गद्य-पद्य दोनो मे उनका समान अधिकार था। ये पुराने युग के अन्तिम और नये युग के पहले कवि थे। अग्रेजी और अग्रेजियत से तत्कालीन समाज मे जो नयापन आ रहा था, उस प्रभाव के खिलाफ उन्होने बहुत-कुछ लिखा था। जैसे अग्रेजी चाल-चलन अपनाने वाली स्त्रियो के

लिए उनकी यह कविता .

आगे मेयेगुलो छिलो भालो
व्रत धर्म कोर्त्तो सबे।
एका बेथुन एसे शेष कोरेछे
आर कि तादेर तेमन पावे।
जतो छूँडी गुलो तुडी मेरे
केताब हाते निच्छे जबे।
तखन ए बि शिखे बिबिसेजे
बिलाति बोल कबेइ कबे।
जखन आसबे शमन कोरबे दमन
कि बोले ताय बुझाइबे
बुझि 'हुट' बोले 'बुट' पाये दिये
'चुरुट' फुँके स्वर्ग जाबे।

यानी पहले की लडकियाँ भली थी, व्रत-पूजा करती थी। अब एक बेथुन आया। (लडकियो का बेथुन कालेज) और सब चाट गया। भला अब उन्हे वैसी पायँगे ? जब वे किताबे लिये डोलती चलती है, तब तो ए० बी० सीखकर विलायती बोल जरूर ही बोलेगी। जब शमन आ धमकेगा और दमन शुरू करेगा, तब उसे क्या कहकर समझाओगे ? शायद हुट करके पाँवो मे बूट डाले चुरुट पीते हुए स्वर्ग जाओगे।

अग्रेजी प्रभाव का बुरा परिणाम

बगला की श्री-वृद्धि मे अग्रेजो का बेशक बहुत बडा हाथ रहा है। यह सोचा भी नही जा सकता कि वे न आये होते, तो क्या होता। पर उसी तरह अग्रेजी ने मातृभाषा और उसके साहित्य के प्रति विमुखता और उदासीनता का भी विष फैलाया था, जिसके लिए आगे चलकर समर्थ लोगो को बदस्तूर बहुत प्रचार-प्रसार करना पडा। अच्छी-से-अच्छी प्रति-भाएँ अग्रेजी-साधना मे लग गई, पढे-लिखे लोग बंगला-पुस्तको को

हेय समझकर अंग्रेजी ही की चर्चा में लग गए। मुसलमानी शासन-काल में बंगालियों में ऐसी आत्म-विस्मृति कभी नहीं आई थी। अंग्रेजी की जाने क्या बयार आई और वे अंग्रेज बनने के लिए पागल हो उठे।

रामराम मिश्र और आनन्दीराम

सन् १७७४ में जब कलकत्ता में सुप्रीम कोर्ट की स्थापना हुई, तो अंग्रेजी सीखने-सिखाने की अनिवार्य आवश्यकता आ पड़ी थी। तब रामराम मिश्र और आनन्दीराम नाम के दो व्यक्तियों ने अंग्रेजी सिखाने का पेशा शुरू किया था। अंग्रेजी लोभातुर कलकत्ता के बड़े-से-बड़े परिवार के लोगों को इन दोनों की पनाह में जाना पड़ा था। रामराम मिश्र ने बाजाब्ता क्लास खोली थी और खासी रकम पैदा की थी। अंग्रेजी की जानकारी में आनन्दीराम की शुहरत ज्यादा थी।

आनन्दीराम का शब्द-संग्रह

उनके पास एक शब्द-संग्रह था, जो एक मूल्यवान रत्न ही माना जाता था। उनकी जो बड़ी खिदमत करता था और सेवा या पैसे से उन्हें रिझा सकता था, उन्हें वे प्रतिदिन पाँच शब्द के हिसाब से दान करते थे।

गुमराह बंगाली युवक-सम्प्रदाय

इस तरह जो अंग्रेजी वहाँ पहुँची, (जो टामस डिस् के 'स्पेलिंग बुक ओ स्कूल मास्टर' तक ही महदूद थी), वह समयानुक्रम से डेविड हेयर साहब, डिरोजियो रिचर्ड्सन आदि की उच्च शिक्षा के फलस्वरूप बेतरह फैल गई। फिर नवयुवकों का एक विराट् सम्प्रदाय अंग्रेजी को ही भाषा और शेक्स-पियर आदि को ही कवि समझने लगा। बंगला में उनके लिए रूप-गुण का कोई आकर्षण ही न रहा। वे अंग्रेजी ही में सपने तक देखने लगे और इस तरह बंगला की समुचित गति पर भारी बाधा आन पड़ी। 'संवाद-प्रभाकर' में ईश्वरचन्द्र गुप्त ने लिखा, 'भैया, दुनिया में भारी उलट-पुलट हो गई, अब खैर नहीं। ये काले युवक सारे-के-सारे साहब बन बैठे, आड़ी-

तिरछी अग्रेजी बोलते है, कहते है 'यू बागाली, डैम, गो टु हेल।' पास आये कि घूँसा लगा.

हय दुनिया उलट पालट
आर किसे भाइ रक्खे होबे।
जत कालेर युवो जेनो सुवो
इंगरेजी कय बाँका भाबे॥
बले यू बागाली, डैम, गो-टु हेल
काछे एलेइ कोत्का खाबे।

अग्रेजियत से आत्म-रक्षा के प्रयास

बगाल और बगला के हितैषी इससे आतकित हो उटे और इसके लिए पत्र-पत्रिकाओं द्वारा उन्होंने लिखा-पढी शुरू की। ईश्वरचन्द्र के अनन्तर महर्षि देवेन्द्रनाथ और राजेन्द्रलाल ने मातृभाषा और स्वदेश की दुहाई देकर अग्रेजियत के खिलाफ आवाज उठाई। देवेन्द्रनाथ के हाथो मे 'तत्त्वबोधिनी' पत्रिका थी और राजेन्द्रलाल ने लिखा 'विविधार्थ सग्रह'। और इसका सुफल हुआ, कई प्रतिभावान, जो अग्रेजी के मोह-कानन मे राह भूले थे, घर की ओर लौटे। प्यारीचॉद और राधानाथ ने अग्रेजी-प्रेम के मोह-पाश से मुक्त होकर बगला मे 'मासिक पत्रिका' निकाली। 'कैप्टिव-लेडी' लिखने वाले अग्रेजी के हिमायती कवि माइकेल मधुसूदनदत्त ने मातृ-भाषा की महत्ता मानी और उन्होंने बग-सरस्वती की वेदी पर 'मेघनाद-वध' 'व्रजागना वीरागना', 'चतुर्दशपदी', 'बुडो सालिकेर घाडे रो' और 'एकेइ कि बले सभ्यता' की भेट चढाई। टेकचॉद का बगला मे प्रथम उपन्यास 'आला-लेर घरे दुलाल' आया और कृष्णकमल भट्टाचार्य ने लिखा—'दुराकाक्षेर वृथा भ्रमण।'

बकिम बाबू का 'बग-दर्शन'

इस अग्रेजियत ने काफी लम्बे अरसे तक अपना प्रभाव फैलाया था,

आगे चलकर बंकिमचन्द्र को भी अपने 'बंग दर्शन' पत्र द्वारा समय-समय पर इस सम्बन्ध मे जोर-शोर से लिखते रहने की जरूरत पडी थी। एक बार उन्होने लिखा, 'जो लोग बगला-ग्रन्थ या सामयिक पत्र-प्रचार मे लगे है, उनके दुर्भाग्य का कहना नहीं। वे चाहे लाख कोशिश करें, देश का कृतविद्य सम्प्रदाय उनकी रचनाएँ पढने से उदासीन है। अंग्रेजी पढे-लिखे लोगो की निश्चित धारणा-सी हो गई है कि बगला मे उनके पढने-योग्य कुछ लिखा ही नहीं जा सकता। उनके खयाल मे बगला-लेखक या तो विद्या बुद्धिहीन, लेखन-कुशलता-विहीन है या वे महज अंग्रेजी के अनुवादक है। उनका विश्वास है, बगला मे जो-कुछ भी लिखा जाता है, वह या तो अपाठ्य है, या अंग्रेजी की छाया है और जो अंग्रेजी मे है, उसे बगला मे पढने की मूर्खता क्यो की जाय। इस तरह काली चमडी के अपराधी हम लोग सदा इसकी सफाई देते फिरते है, वे बगला पढकर कबूल जवाब क्यो दे।'

अन्यान्य पत्र-पत्रिकाओ की सेवा

बंकिम बाबू के 'बंग दर्शन' ने बडा काम किया। देखा-देखी अन्य अनेक पत्र निकल आए और बगला की सौभाग्य-रचना मे सहायक हुए। 'आर्य-दर्शन', 'बाधव', 'भ्रमर', 'ज्ञानाकुर', 'भारती', 'नवजीवन', 'साधारणी', 'प्रचार', 'साधना' आदि अनेक पत्र-पत्रिकाओ ने बगला के प्रचार-प्रसार का बीडा उठाया। 'तत्त्वबोधिनी' पत्रिका से देश-प्रेम, भाषा-प्रेम और प्राचीन संस्कृति की रक्षा की जो आप्राण चेष्टा महर्षि देवेंद्रनाथ ने की, 'भारती' और 'साधना' द्वारा उनकी सन्तान—द्विजेन्द्र, रवीन्द्र, स्वर्णकुमारी देवी आदि—ने सेवा मे उस यज्ञ-कुण्ड मे सदा आहुति जुगाई। धीरे-धीरे मातृभाषा के प्रति लोगो का प्रेम बढा और छोटी-सी अवधि मे बगला काफी समृद्ध हो सकी। बगला का आज का पत्र-साहित्य भी काफी समुन्नत है। द्विजेन्द्र लाल राय का 'भारतवर्ष', रामानन्द चट्टोपाध्याय का 'प्रवासी', 'विचित्रा', बसुमती, 'बगश्री' 'शनिवारेर-चिठि', 'तरुणेर स्वप्न', 'परिचय', 'पूर्वाशा', 'मदिरा', 'मुखपत्र',

'महिला' आदि पत्र-पत्रिकाएँ अच्छी निकल रही हैं।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर

भाषा-संस्कार की दृष्टि से हिन्दी में जो स्थान आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का है, बंगला में वही स्थान ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का है। इन्होंने अपने अथक श्रम से बंगला को सफल और समर्थ साहित्य का सशक्त वाहन बनाया। आधुनिक बंगला के उन्नायकों में आप अनन्य हैं। इनसे पूर्व जो ग्रन्थादि निकले थे, उनमें से अधिकांश अनुवाद थे और भाषा या तो पण्डिताऊ संस्कृत का बोझिल जामा पहने थी या अंग्रेजी के ढंग-ढर्रे की नकल थी। यति-गति, पद-विन्यास, शब्द-योजना, विराम-चिह्नों का प्रयोग, कुछ भी ठीक-ठिकाने का न था। भाषा की वह पंगुता दूर करके उसे उपयुक्त अभिव्यंजना के अनुकूल रूप देने का प्रथम श्रेय विद्यासागर का है—उन्हें साधु गद्य का जनक ही कहा जा सकता है। बंगला भाषा का जो आज व्यावहारिक रूप है, उसकी प्रथम सूचना वहीं हुई।

विद्यासागर और उनकी रचनाएँ

विद्यासागर के जीवन से प्रायः सभी परिचित हैं। उनका विद्या-व्यसन, शिक्षा-संस्कार, सादगी, श्रमशीलता—सब अनुकरणीय हैं। १८२० ई० में वे मेदिनीपुर जिले के वीरसिंह ग्राम में पैदा हुए थे और १८९१ में उनकी मृत्यु हुई थी। विद्यासागर की मुख्य पुस्तकें हैं—'वासुदेवचरित', 'बैताल-पंचविंशति', 'बांगलार इतिहास', 'जीवनचरित', 'बोधोदय', 'कथामाला', 'शकुन्तला', 'सीता वनवास', 'आख्यान मंजरी', 'महाभारत की उपक्रमणिका', 'भ्रांतिविलास'; 'संस्कृत भाषा ओ संस्कृत साहित्य-शास्त्र विषयक प्रस्ताव', 'उपक्रमणिका' 'संस्कृत व्याकरण कौमुदी' आदि। इनमें से ज़्यादा पुस्तकें यद्यपि पाठ्य पुस्तकें रही हैं और हिन्दी-संस्कृति या अंग्रेजी का अनुवाद रही हैं, फिर भी उनकी शैली में अनुवाद की पंक्तिबद्ध दासता नहीं है, स्वतन्त्र रचना का सौंदर्य है। कुछ मौलिक रचनाएँ भी उनकी हैं।

विद्यासागर के अनुयायी

विद्यासागर की लीक पर और जो लोग बंगला-गद्य को सँवारने में सहायक हुए, उनमें से उल्लेख-योग्य हैं—अक्षय-कुमार दत्त, राजनारायण बसु, ताराशंकर तर्करत्न, रामगति न्यायरत्न, देवेन्द्रनाथ ठाकुर, भूदेव मुखोपाध्याय आदि। वर्धमान के महाराज महताब चाँद बहादुर ने रामायण-महाभारत आदि अनेक संस्कृत-ग्रन्थों के गद्य-पद्यानुवाद प्रकाशित कराये; 'हातिमताई', 'चहार दरवेश', 'सिकन्दरनामा', 'मसनवी' के बंगला-अनुवादों से साहित्य का भण्डार भरा।

बंकिमचन्द्र चटर्जी

'वन्देमातरम्' मन्त्र के स्रष्टा औपन्यासिक-सम्राट् बंकिमचन्द्र ने बंगला-गद्य को ही अपनी रचनाओं से ऐश्वर्यमय नहीं बनाया, बल्कि कथा-साहित्य को एक नई दिशा देकर उन्होंने साहित्य को एक नया वैभव और नया मार्ग दिया। यह अवश्य है कि उनकी रचनाओं की पृष्ठभूमि अंग्रेजी के रोमांस के प्रभाव पर तैयार हुई, लेकिन उनमें विदेशी बू की ही प्रधानता इसलिए नहीं है कि उपन्यास का सारा माल-मसाला देशी है। पात्र-चरित्र, दृश्य-घटना, काल-परिवेश सब-कुछ अपने यहाँ का है।

बंकिम का आदर्शवाद

नीति और आदर्श की ओर उनका झुकाव था और बहुत स्थानों में तो उपन्यासों में वे उपदेशक-से बन गए हैं। उनकी कृतियों के कलात्मक मूल्यांकन में उनके इस आदर्शवाद पर आज बहुत तरह के विरोधी विचार उठते हैं, पर इतना तो कबूल करना ही पड़ेगा कि बंगला में यह श्रेय पहले-पहल उन्हींकी कृतियों का है कि व्यक्ति-जीवन के संकीर्ण दायरे में मानव-प्रीति प्रवेश पा सकी, रस के आनन्द से चित्र का विस्तार हुआ और मुक्ति का मंगल-सन्देश मनःप्रदेश में पहुँचा। देश की परिस्थिति और उससे जन्म लेने वाले भाव-विचारों ने लेखक को आदर्शवादी बनाया। जो भी हो, साहित्य के

लिए उनके प्रयास बड़े मगलजनक हुए और कथा-साहित्य की धारा को एक अश्रान्त वेग मिला।

बकिम से पहले के बगला-उपन्यास

बकिमचन्द्र के पूर्व नामलेवा दो-एक गल्प-उपन्यास निकले जरूर थे, मगर वे कुछ वैसे न थे। टेकचॉद ठाकुर के 'आलालेर घरेर दुलाल' का नाम लिया जा सकता है, जिसने बकिम पर अपना कुछ प्रभाव डाला था। उसे बगला-उपन्यास का पूर्वाभास कह सकते है। भूदेव मुखोपाध्याय के 'अगुरीय-विनिमय' से बकिम को 'दुर्गेशनन्दिनी' के लिए प्रेरणा मिली थी।

बकिम की कृतियॉ

बकिम बाबू कलकत्ता-विश्वविद्यालय के पहले ग्रेजुएट (१८५७ ई०) थे। कालेज-जीवन से ही उनकी साहित्य-साधना शुरू हुई थी। पहले वे कविता लिखते थे। उनकी काव्य-पुस्तक है 'ललिता तथा मानस'। कविता मे सफलता न मिलने से कुछ दिनो तक तो वे साहित्य रचना से विमुख रहे। लिखने का दूसरा अध्याय उन्होने अग्रेजी मे शुरू किया। उनका पहला अग्रेजी-उपन्यास 'राजमोहन्स वाइफ' के नाम से 'इण्डियन फील्ड' नामक अग्रेजी साप्ताहिक मे निकला। उसकी भी निस्सारता उन्हे मालूम हुई—फिर वे मातृभाषा की सेवा मे दत्तचित्त हुए और एक-एक करके 'दुर्गेशनन्दिनी', 'कपालकुण्डला', 'मृणालिनी', 'विष-वृक्ष', 'इन्दिरा', 'युगलागुलीय', 'साम्य', 'चन्द्रशेखर', 'कमलाकात का दफ्तर', 'रजनी', 'राधारानी', 'कृष्णकान्त का बिल', 'राजसिह', 'मुचिराम गुड का जीवन-चरित', 'आनन्द मठ', 'देवी चौधरानी' और 'सीताराम' निकला। आज बगला का उपन्यास-साहित्य काफी फूल-फल उठा है, शैली, विषय-वस्तु, दृष्टि सबमे पर्याप्त उन्नति हो गई है, फिर भी बकिम की रोमाण्टिक धारा का प्रभाव किन्ही अशो मे है।

बकिम के समसामयिक कथाकार

बकिम के समय मे या आस-पास और भी अनेक कथाकार हुए।

जिनमे से तारकनाथ गगोपाध्याय ने अपने 'स्वर्णलता' मे स्वाभाविक जीवन के सजीव चित्र दिये। बकिम के पात्र दैनन्दिन जीवन के हमारे परिचित मनुष्य से परे भाव-लोक के अधिवासी रहे, हाड-मास के उन पुतलो का प्रवेश बगला मे यही सर्वप्रथम हुआ, जो प्रेम की दिव्य उमगो के कल्पना-लोक से बाहर मिट्टी की धरती के रहने वाले है। रमेशचन्द्र दत्त ने भी कई उपन्यास लिखे, जिनमे चार तो ऐतिहासिक उपन्यास है—बग-विजेता', 'माधवी ककरण', 'जीवन-प्रभात,' 'जीवन-सध्या'। इनमे क्रम से अकबर, शाहजहाँ, औरगजेब और जहाँगीर-कालीन घटनाओ पर उपन्यास की भित्ति खडी की गई है।

बगला-नाटक और नाट्यशाला प्राचीन नाटकीय तत्त्व

बगला-नाटको का उद्भव और विकास तो उन्नीसवी सदी के मध्य से लेकर २०वी सदी तक हुआ है, किन्तु पुरानी कृतियो मे पहले से ही नाटकीय तत्त्वो का थोडा-बहुत आभास मिलता है। बारहवी सदी के चर्या-पदो मे नाटकीयता की बू-बास मिलती है। एक स्थान पर 'बुद्ध नाटक' की चर्चा मिलती है .

नाचन्ति बाजिल गाअन्ति देवी।
बुद्ध नाटक विषमा होइ।

नाटक को विषमा सम्भवत. इसलिए कहा गया क्योकि साधारण नियम पुरुषो के गाने और स्त्रियो के नाचने का है—यहाँ उलटा है कि स्त्री ही गाती है। एक दूसरे चर्या-पद मे है .

एक सो पदुमा चौषट्ठि पाखुडि।
तहि चढि नाचय डोंबि वापुडी॥

यानी एक पदुम की चौसठ पखुडियो पर डोमिन नाच रही है। कही-कही 'नटपेटिका' का भी उल्लेख आया है। इन पदो के मूलत. आध्यात्मिक अर्थ है, पर उनमे नृत्य-गीति की परिचिति का पता चलता है। गीत-नृत्य से नाटक का घनिष्ट सम्बन्ध है। बहुतो ने तो 'नृत्' धातु से ही नाटक का

सम्बन्ध भी जोड़ा है। उससे नृत्त और नृत्य—दो शब्द बनते हैं; पहले का अर्थ होता है ताल-लय के सहारे अंग-विक्षेप और दूसरे का हाव-भाव सहित अंग-विन्यास यानी अभिनय।

कृष्ण-कीर्त्तन में नाटकीयता

पन्द्रहवीं-सोलहवीं सदी के कृष्ण-कीर्त्तन-पदों में कथोपकथन का रूप भी देखने को मिलता है। बड़ू चंडीदास के 'कृष्ण-कीर्त्तन' के यमुना-खण्ड में ऐसा अंश है। यमुना के घाट पर राधा घट भरने गई है, अकेले में कृष्ण मिलते हैं। दोनों में बातें होती हैं। वह सारा अंश ऐसा लिखा है कि केवल पात्रों का नाम जोड़ देने से कथोपकथन ही हो सकता है। जैसे :

काहार बहु लो काहार रानी।
केन्हें यमुनात तोलसि पानी॥
बड़ार बहु मो बड़ार झि
आम्हें पानि तुलि तो तोम्हार कि॥
काखेर कलस नाम्बाओ तोम्हे।
कथा चारि-पाँचि कहिब आम्हे॥
जार कान्धे बोसे दोसर माथा।
सेहि आम्हा समे कहिबे कथा॥

गद्य में इसे रूपान्तरित कर दिया जाय, तो वह इस प्रकार होगा—

कृष्ण—तुम किसकी बहू हो, किसकी रानी। क्यों यमुना से भरती हो पानी।

राधा—मैं बड़े की बहू हूँ, बड़े की बेटी। पानी भरती हूँ तो तुम्हारा क्या?

कृष्ण—अपनी कमर से गगरी उतारो—चार-पाँच बातें तुमसे करूँगा।

राधा—गरदन पर जिसके दो सिर होंगे, वही मुझसे बात करेगा।

चैतन्य-अभिनीत 'रुक्मिणी-हरण'

चैतन्य महाप्रभु के समय और उनके बाद चरित-गाथाओं में नाट्य-तथ्य

का समावेश है। उस समय नाट्य-गीतों का प्रचलन था। दो-तीन या इससे भी अधिक पात्र-पात्री हाव-भाव दिखाकर कथोपकथन द्वारा किसी घटना का प्रदर्शन करते थे। अवश्य, वह कथोपकथन पद्य में ही होता था। ऐसा पता चलता है कि स्वयं चैतन्य प्रभु ने 'रुक्मिणी हरण' के अभिनय में भाग लिया था और वे खुद रुक्मिणी बने थे। श्रीवास, हरिदास, गदाधर आदि अन्य कई लोग उसमें शामिल हुए थे :

प्रथमे प्रविष्ट हैला प्रभु हरिदास।
महा दुइ गोंफ कटि बदल विलास॥
महापाग शिरे शोभे धरि परिधान।
देखिया सभार हैल विस्मय—गेयान॥

ऐसा बाना बनाकर हरिदास आये कि लोग-बाग दंग रह गए।

झूमर और यात्रा

ऐसे पांचाली गीतों ने धीरे-धीरे झूमर का रूप लिया और झूमर ने यात्रा का। यात्रा का बहुत संस्कृत रूप तो बंगाल में आज भी प्रचलित है। इस यात्रा का नाटक से सिर्फ इतना ही अन्तर है कि इसका स्टेज नहीं होता, पर्दा-दृश्य नहीं होता। मजमे में थोड़ी-सी जगह घेरकर लोग खुले ही में पूरे नाटक का प्रदर्शन करते हैं। किन्तु पुरानी यात्रा की परिपाटी इससे जुदी थी। उसका थोड़ा-सा परिचय भारतचन्द्र के चंडी नाटक में मिलता है। गीतों की ही प्रधानता होती थी। एक होता था मूल गायक और उसका अनुकरण करने वाले अन्य बहुत-से लोग होते थे। साथ-साथ नृत्याभिनय चलता था। इस तरह ऐसे अभिनय को 'पाला' कहते थे, जिसमें मूल गायक ही वास्तव में 'नट' होता है और नृत्यकार गायिका 'नटी' होती थी।

नाट और नाट-मंदिर

पिछले दिनों के सब मंगल-काव्यकारों ने अपने काव्यों को नाट भी कहा है और जहाँ वह गीताभिनय होता था, उस स्थान को नाट-मंदिर।

रामायण, कृष्ण-लीला-कीर्त्तन की उन दिनो की ग्राम-गोष्ठियाँ ही रगमच का अविकसित रूप थी। किन्तु फिर भी अगर उन्हीको आधुनिक नाटक और रगशाला का जननी-जनक कहे, तो शायद सही नही होगा। नाटको के विकास मे सबसे ज्यादा हाथ रगमच-प्रतिष्ठा का रहा है। हिन्दी का नाट्य-साहित्य जो आज आशानुरूप विकसित नही है, उसका एक जबरदस्त कारण अच्छे रगमच का अभाव है।

रगशाला

बगला मे आज एक नही, अनेक समृद्ध रगमच है, जिनमे एक-से-एक अभिनय-शिल्पियो का सहयोग है और इसीलिए नाटककारो मे नाटक-विकास की तत्परता है। बगला-रगशाला का इतिहास बडा लम्बा और दिलचस्प है।

हेरासिम लेवेडफ का रगमच

अठारहवी सदी के अन्त की ओर लोगो की नाट्य-पिपासा को रुचि के अनुरूप खुराक नही मिल रही थी। यात्रा की पुरानी पद्धति से लोग अब ऊब-से उठे थे। अग्रेजी शिक्षा के प्रसार से नाट्य-वृत्ति मे नई जिज्ञासा जागी थी। ऐसे समय एक रूसी—हेरासिम लेवेडफ—कलकत्ता आये और डूमतला (आज का एजरा स्ट्रीट) मे उन्होने एक रगमच कायम किया। सन् १७९५ और ९६ मे उन्होंने दो नाटक अभिनीत किये—'दि डिसगाइस' और 'लव इज द बेस्ट डॉक्टर' का अनुवाद। उसके बाद वे नाट्यशाला बन्द करके विलायत चले गए—जहाँ उन्होने एक हिन्दुस्तानी व्याकरण लिखा। उसकी भूमिका मे उस नाट्यशाला के बारे मे थोडा-बहुत परिचय है। उन्होने उपर्युक्त दो पुस्तको को ही क्यो चुना, इस पर लिखा है **भारतीय भाषा और साहित्य-विषयक गवेषणा के बाद मैने 'डिस-गाइस' और 'लव इज़ द बेस्ट डॉक्टर' का अनुवाद किया। मैने गौर करके देखा, यहाँ के लोग उपदेशमूलक कथाओ से, चाहे वे कितने ही अच्छे ढग से क्यो न प्रकाशित हो, नकल और हास्य-परिहास को ज्यादा**

पसन्द करते थे। इसलिए मैने चौकीदार, चोर, वकील, गुमाश्ते इत्यादि चरित्रों से भरे इन दो नाटको को ही चुना।'

बगालियो का निजस्व रङ्गमञ्च

इसके कोई चालीस साल बाद बगालियो का अपना रङ्गमञ्च प्रतिष्ठित हो सका। किन्तु निजस्व नाटक-साहित्य का जन्म तब भी नही हो सका। १८३१ ई० मे प्रसन्नकुमार ठाकुर की नाट्यशाला मे जो दो नाटक अभिनीत हुए—दोनो ही अग्रेजी के अनुवाद थे, एक तो शेक्सपियर का 'जूलियस सीजर' और दूसरा विल्सन कृत भवभूति के 'उत्तर रामचरित' का अनुवाद। शेक्सपियर के नाटको ने ही प्राथमिक दिनो मे बगाल को विशेष रूप से अनुप्रेरित किया, ऐसा पता चलता है।

विविध रङ्गमञ्च और अनुवादित नाटक

१८३५ मे श्याम बाजार के नवीनचन्द्र बसु की नाट्यशाला मे 'विद्या-सुन्दर' नाटक के बजाय, बाद मे वर्षों तक शेक्सपियर के नाटको की ही धूम रही। डेविड हेयर एकेडेमी (१८५१ मे प्रतिष्ठित) ने १८५३ मे शेक्सपियर का 'मर्चेण्ट ऑव वेनिस' खेला। ओरियण्टल सेमिनरी विद्यालय ने ओरियण्टल थियेटर की स्थापना की थी। उसमे १८५३ मे 'ओथेलो', १८५४ मे 'मर्चेण्ट ऑव वेनिस', १८५५ मे 'चतुर्थ हेनरी' का अभिनय किया। प्यारीमोहन बसु के जोडा-सॉको-थियेटर मे भी शेक्सपियर का 'जूलियस सीजर' ही खेला गया था। वास्तव मे नाटक की प्राथमिक चेष्टाएँ अग्रेजी और सस्कृत के ही आधार पर हुई। नन्दकुमार राय का 'अभिज्ञान शकुन्तला', रामचन्द्र तर्कालकार का 'कौतुक सर्वस्व', नीलमणि पाल का 'रत्नावली'—सब-के-सब सस्कृत के अनुवाद थे। बगला के मौलिक नाटको का अभाव-सा ही था।

प्रथम मौलिक नाटक

योगेन्द्रचन्द्र गुप्त का 'कीर्ति विलास', ताराचरण शिकदार का 'भद्रार्जुन' और हरचन्द्र घोष का 'भानुमती विलास'—इन तीन नाटको मे पहले-पहल

थोड़ी-बहुत मौलिकता के निदर्शन मिले, गो कि तीनों या तो आख्या-यिकाओं या विदेशी कथा-वस्तु पर ही बने हैं

वियोगान्त नाटक

'कीर्ति विलास' प्राचीन पद्धति के विरुद्ध वियोगान्त नाटक है। जिसकी कैफ़ियत लेखक ने भूमिका में दी है। नाटक में पाँच अंक थे और प्रस्तावना संस्कृत-नाटकों-जैसी थी। 'भद्रार्जुन' में भी विषय-वस्तु की मौलिकता नहीं है, पर टेकनिक में नयेपन का समावेश किया गया है। नाटक से नान्दीमुख, प्रस्तावना और विदूषक को दूर कर दिया गया है। पद्धति में संस्कृत और अंग्रेजी कौशल का सामञ्जस्य है। गद्य से पद्य की मात्रा नाटक में ज़्यादा है। 'भानुमती विलास' तो 'मर्चेण्ट ऑव वेनिस' का ही अनुवाद है। घोष महाशय के और भी कई नाटक हैं, 'चारुमुख चित्त हरा' और 'रजत गिरिनन्दिनी' भी अंग्रेजी के ही अनुवाद हैं। कालीप्रसन्नसिंह ने भी कई नाटक लिखे—'बाबू नाटक', 'विक्रमोर्वशी', 'मालती माधव'। ये भी अनुवाद ही थे।

रामनारायण तर्करत्न

नाटककारों में उस समय रामनारायण तर्करत्न एक ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने बहुत से विषयों को नाटक का आधार बनाया। उन्होंने पौराणिक कहानी, रोमाण्टिक कहानी, सामाजिक कहानी, सबको नाट्य-वस्तु बनाकर रचना की। 'शकुन्तला', 'रत्नावली', 'मालती माधव' का अनुवाद भी किया। नाट्य-कला की कसौटी पर उनका मूल्य-महत्त्व चाहे ज़्यादा न हो, पर वही पहले व्यक्ति हैं, जिन्होंने समाज-संस्कार को नाट्य का उद्देश्य बनाया। ऐसे उनके दो नाटक हैं—'कुलीन कुल सर्वस्व' और 'नवनाटक'। पहले में कौलीन्य-प्रथा का दोष दिखाते हुए कुछ कौतुकपूर्ण दृश्य हैं—दूसरे में बहु विवाह पर प्रकाश है। 'कुलीन कुल सर्वस्व' कई बार खेला गया। 'नवनाटक' जोड़ा-साँको-नाट्यशाला के लिए लिखा गया था, जिसकी प्रतिष्ठा गुणेन्द्र ठाकुर, ज्योतिरीन्द्रनाथ ठाकुर प्रभृति ने की थी।

तत्कालीन नाटकों की कथा-वस्तु

बहु विवाह पर एक नाटक लिखने के लिए उपर्युक्त नाट्यशाला ने पहले 'इण्डियन डेली न्यूज' में एक विज्ञापन देकर पुरस्कार की घोषणा की थी। बाद में वह नाटक लिखने का भार रामनारायण तर्करत्न को सौंपा गया। उन्हें पुरस्कृत करने के लिए 'आलालेर घरेर दुलाल' के लेखक टेकचाँद ठाकुर उर्फ प्यारीचाँद मित्र की अध्यक्षता में एक समारोह-सभा भी बुलाई गई थी।

सामाजिक समस्या

उस नाटक से ऐसा प्रभाव पड़ा कि थोड़े ही अरसे में समाज-संस्कार की दृष्टि से लिखे गए नाटकों की बाढ़-सी आ गई। केवल विधवा-विवाह-विषयक नाटक ही दर्जनों तैयार हो गए। उमेशचन्द्र मित्र का 'विधवा विवाह', उमाचरण चट्टोपाध्याय का 'विधवोद्वाह', राधामाधव मित्र का 'विधवा मनोरञ्जन', सैमुअल पीर बख्श का 'विधवा विरह' आदि-आदि।

नाट्यशालाओं की बाढ़

इन नाटकों में कलात्मकता की बड़ी कमी थी। किन्तु इस बाढ़ से नाटक के प्रति रुझान का स्पष्ट पता चलता है। जगह-जगह रङ्गशालाएँ धड़ल्ले से खुलने लगीं और नाटकाभिनय होने लगे। यतीन्द्रमोहन ठाकुर ने कवि मधुसूदनदत्त को एक पत्र में लिखा था : **आज दिन देश में नाट्यशालाएँ बरसाती मेढ़क की तरह बढ़ती जा रही हैं। दुःख है, इनकी आयु बड़ी थोड़ी होती है, फिर भी इन्हें हम सुलक्षण में ही गिनेंगे, क्योंकि इनसे यह पता चलता है कि हम लोगों में नाटकों की रुचि बढ़ रही है।**

नाटक और माइकेल मधुसूदन

तत्कालीन पुस्तकों में नाटकीयता के गुणों की कमी देखकर ही मधुसूदनदत्त-जैसे समर्थ कवि नाटक लिखने की ओर झुके। रामनारायण तर्करत्न के नाटक पर उन्होंने दुःख से लिखा था :

अलीक कुनाट्ये रंगे मरे लोक राढ़े बंगे
निरखिया प्राणे नाहिं सय।

यानी अलीक और बुरे नाटकों के रङ्ग पर राढ़-बंग के लोग मर रहे हैं, यह सहा नहीं जाता।

मधुसूदन ने चार नाटक लिखे—'शर्मिष्ठा', 'पद्मावती', 'कृष्णाकुमारी' और 'माया कानन'। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इन नाटकों से विषय-वस्तु, रचना-कौशल, भाषा, घटना और संगति की दिशा में बहुत-कुछ नयेपन का संचार हुआ। ये नाटक अनेक बार भिन्न-भिन्न रङ्गमञ्च पर अभिनीत और प्रशंसित हुए। इनके नाटकों की सामग्री महाभारत, ग्रीक उपाख्यान और राजपूती कहानी से तैयार हुई है। 'पद्मावती' में रोमाण्टिक प्रभाव है। इन सबमें 'कृष्णाकुमारी' नाटक उत्कृष्ट है, जिसने परवर्ती अनेक नाटककारों पर अपनी छाप छोड़ी है। मधुसूदन ने दो प्रहसन भी लिखे—'एकेइ की बले सभ्यता' और 'बूड़ो सालिकेर घाड़े रों'। प्रहसन कहने को बंगला में यही दो प्रथम हैं। बाद में इनकी देखा-देखी प्रहसनों की रचना बहुतों ने की, किन्तु उनकी बराबरी नहीं हो सकी।

दीनबन्धु मित्र के नाटक

कला की दृष्टि से तो नहीं, पर एक नई प्रेरणा का सञ्चार करने के कारण दीनबन्धु मित्र का नाम भी नाटककारों में उल्लेखनीय है। दीनबन्धु के बहुत-से नाटक हैं—'नवीन तपस्विनी', 'बिये पागला बुड़ो', 'सधवार-एकादशी', 'नील दर्पण' आदि। 'नील दर्पण' को छोड़कर बाकी सब लगभग प्रहसन हैं और मधुसूदन के प्रहसन से निम्न स्तर के। नाट्य-कौशल की दृष्टि से बल्कि 'सधवा की एकादशी' बहुत-कुछ अच्छी बन पड़ी है। उनका उल्लेख-योग्य नाटक तो 'नील दर्पण' ही है। उसमें निलहे साहबों के अत्याचारों से पीड़ित तत्कालीन कृषक-समाज का जीवन्त चित्र है। इसमें वास्तविकता और लेखक की सहृदयता से एक खास आकर्षण है, नहीं तो घटना, भाषा आदि के लिहाज़ से नाटक में वैसा दम नहीं है।

अन्य यशस्वी नाटककार

बाद के क्षमताशाली नाटककारों में मनोमोहन बसु, हरलाल राय, ज्योतिरीन्द्रनाथ ठाकुर, गिरीशचन्द्र घोष, क्षीरोद प्रसाद विद्याविनोद, अमृतलाल बसु और द्विजेन्द्रलाल राय हैं। मनोमोहन बसु का कृतित्व पौराणिक नाटकों द्वारा भक्ति का सञ्चार है। पूर्ववर्त्ती कई लेखकों ने पौराणिक नाटकों की रचना की थी, पर भक्ति के अभाव से ही उन्हें वह सफलता नहीं मिली। इनके नाटक हैं—'रामाभिषेक नाटक', 'प्रणय-परीक्षा', 'सती नाटक', 'हरिश्चन्द्र नाटक', 'पार्थ-पराजय', 'रासलीला', 'आनन्दमय नाटक'। बाद के दो यशस्वी नाटककार गिरीशचन्द्र घोष और क्षीरोदप्रसाद विद्याविनोद पौराणिकता में इन्हींसे अनुप्राणित हुए। देश-प्रेम की ध्वनि मनोमोहन के नाटकों की अपनी विशेषता है।

नेशनल थियेटर और नाटकों में युगान्तर

सन् १८७३ में बंगाल में नेशनल थियेटर नाम की नाट्यशाला के प्रतिष्ठित होने से नाट्य-साहित्य में भी युगान्तर उपस्थित हुआ। इसीके आस-पास दो और रङ्गमञ्च प्रतिष्ठित हुए—ओरियण्टल थियेटर तथा बंगाल थियेटर। देश में कांग्रेस के आन्दोलन से जातीय जीवन में एक नई लहर आई थी। बंगाल में जोड़ासाँको के ठाकुर-परिवार में नवीन विचारों का एक परिपक्व केन्द्र भी कायम हो गया था। अतः इससे पूर्व की नाट्य-साधना, जो पौराणिक उपाख्यान, विधवा-विवाह-बहु विवाह आदि समाज-संस्कार; निलहे-धनी जमींदारों के अत्याचार या संस्कृत-अंग्रेजी के अनुवाद पर ही केन्द्रित थी, यहाँ आकर एक सर्वथा नई दिशा में मुड़ गई। हरलाल में पुराना प्रभाव ही ज्यादा रहा—इस नई चेतना का थोड़ा-सा आभास आ पाया। उनके नाटकों में 'हेमलता', 'शत्रु संहार', 'बंगेर सुखावसाने', 'रुद्रपाल', 'कनकपद्म' आदि मुख्य हैं और अभिनय में बड़े लोकप्रिय हुए। अन्तिम दो तो 'हैमलेट' और 'अभिज्ञान शाकुन्तल' के अनुवाद हैं। ज्योतिरीन्द्रनाथ ठाकुर ने कुछ तो प्रहसन लिखे, कुछ फ्रांसीसी व्यंग्य

नाटककार मौलियर की किताबों का अनुवाद किया और कुछ मौलिक नाटक भी लिखे। प्रहसनों में 'अलीक बाबू' और 'हिते विपरीत' प्रधान हैं : अनुवादों में मुख्य हैं—'हठात् नवाब' और 'दाये पोड़े दारग्रह'। और उनके मौलिक नाटक हैं—'पुरु विक्रम', 'चित्तौड़-आक्रमण', 'अश्रुमती' और 'स्वप्नमयी'।

ज्योतिरीन्द्र के नाटकों में तीन बातें मुख्यतया पाई जाती हैं—देशानुराग की भावना, ऐतिहासिक घटनाओं से भारतीय महिमा का प्रतिपादन और नारी-चरित्र का निखार। प्रथम दो नाटकों में भारत पर विदेशी आक्रमण के आधार पर उनके शासन के प्रति असन्तोष और जातीय जागरण की चेतना का उन्मेष है। इनके कई नाटकों में रवीन्द्र-रचित कविता और गीत लिये गए हैं। खेलने की दृष्टि से इनके नाटक विशेष सफल रहे। असल में उस समय तक नाट्य-दर्शकों की रुचि काफी परिमार्जित हो गई थी और केवल अनुवादित नाटकों से उन्हें सन्तोष नहीं हो रहा था। शेक्सपियर के नाटकों का धड़ल्ले से अनुवाद होता रहा। संस्कृत के नाटक भी रूपान्तरित होकर आये; समाज-संस्कारक भावना से उद्भूत कुछ ऐसे भी नाटक आये, जिनमें थोड़ी-बहुत मौलिकता का आभास था। परन्तु जन-रुचि को जो चाहिए था, तत्कालीन नाटकों में उसकी निहायत कमी थी। उन्नीसवीं सदी के अन्तिम कई दशकों में बंगाल में नाट्य-प्रदर्शन का ज़ोर बहुत बढ़ा, किन्तु नाटकों में जिस कल्पना और रस-दृष्टि की खोज दर्शकों को थी, उसका बंगला-नाटकों में नितान्त अभाव था। मनोरंजन के नाम पर निकृष्ट और भोंड़े हास्य की अवतारणा ही होती थी। लिहाजा नाट्य-गृह-परिचालकों ने तत्कालीन काव्यों और उपन्यासों को नाट्य-रूप देकर खेलना शुरू किया था। और वैसे नाटक रंगमंच पर बड़े सफल हुए। माइकेल मधुसूदन की 'मेघनाद वध', कवि हेमचन्द्र का 'वृत्र संहार', ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का 'सीता वनवास', बंकिमचन्द्र का 'दुर्गेश नन्दिनी' और 'कपाल कुण्डला', नवीनचन्द्र सेन का 'प्लासी का युद्ध' आदि अनेक पुस्तकें नाटक बनाकर खेली गईं।

नाट्यकार गिरीशचन्द्र घोष

बगला के कृती नाटककारो मे सबसे ज्यादा प्रसिद्ध है—गिरीशचन्द्र घोष, अमृतलाल बसु और द्विजेन्द्रलाल राय। प्रथम दो तो नाट्यकार और नट दोनो ही थे और बगला-रगमच को अपनी कला से उन्होने काफी उन्नत बनाया। गिरीशचन्द्र ने अनेको नाटक लिखे, जिनमे से कुछ तो पौराणिक नाटक है और कुछ गीति-नाट्य। 'सीता वनवास','रावण-वध','सीता-हरण', 'अभिमन्यु-वध','मोहिनी प्रतिमा','मलिन-माला', 'पाण्डवो का अज्ञात वास', 'चैतन्य-लीला', 'बुद्धदेव-चरित', 'जना', 'प्रफुल्ल', 'बिल्व-मगल ठाकुर', 'बलिदान' आदि इनकी प्रमुख रचनाएँ है। गिरीशचन्द्र ने भारतीय जातीय जीवन की इस लोकप्रिय प्रवृत्ति को भली भाँति समझा था कि यहाँ के लोग पौराणिक आदर्श चरित्रो को खूब चाहते है। इसीलिए पौराणिक चरित्रो को उन्होने चुना जरूर, किन्तु उन्हे निजस्व आदर्श के अनुरूप उपस्थित किया। उनके नाटको का मूल सुर वास्तव मे भक्ति और करुणा है। जीवन की अभिज्ञता की गहराई उनमे नही थी, पारिपार्श्विक भी सकीर्ण था, साथ ही धर्मनिष्ठा की सकुचितता भी थी। इसीलिए ८० से अधिक नाटक लिखकर और सैकडो चरित्रो की सृष्टि करके भी वे उच्चकोटि की कला नही दे सके। पागल, गँजेडी, शराबी-जैसे अनेक चरित्र उनके नाटको की एक विशेषता है।

अमृतलाल बसु

अमृतलाल बसु जैसे यशस्वी नाटककार थे, उतने ही सफल अभिनेता भी थे। उनके नाटक आम तौर से छोटे होते थे, सरल और हास्य रस का पुट उनमे विशेष रूप से होता था। सामयिक घटनाओ तथा वैयक्तिक तथा सामाजिक कमजोरियो पर उन्होने जो रचनाएँ की है, वे बडी रसमयी हो उठी है। उनके प्रहसनो मे 'विवाह-विभ्राट्', 'एकाकार', ग्राम्य-विभ्राट्', 'बाबू', 'अवतार' आदि सुन्दर बन पडे है। 'हीरक चूर्ण' नाटक मे एक सामयिक घटना है, जिसमे गायकवाड मल्हारराव के निर्वासन-विचार

को आधार बनाया गया है। उन पर अभियोग था कि उन्होने जहर देकर रेजिडेट फेराटा को मार डालने की कोशिश की थी। इस घटना ने देश मे काफी उथल-पुथल मचाई थी।

द्विजेन्द्रलाल राय

नाट्यकारो मे द्विजेन्द्रलाल राय बडे मशहूर हुए और उनके नाटक भी बडे लोकप्रिय हुए। रगमच पर उनका बार-बार अभिनय होता रहा और आज भी वे चाव से खेले जाते है। किन्तु सच पूछिये तो नाट्य-कला की दृष्टि से उन नाटको मे काफी दोष है। चरित्रो का स्वाभाविक विकास नही हो पाया है, कथानक मे प्रवाह नही है, देश-काल-पात्र का सामञ्जस्य नही रह पाया और कथनोपकथन मे बडी कृत्रिमता है। इस सब-कुछ के बावजूद उनको जो इतनी प्रसिद्धि मिली, उसका एक कारण उनकी काव्य-कुशलता है। उनके हँसी के गान और देश-भक्ति के गीत बडे प्रसिद्ध है और वास्तव मे उनमे दक्ष काव्य-प्रतिभा की झलक मिलती है। बगला-छन्द और गीत की सुर-योजना की अभिनवता उन गीतो की विशेषता है। उस सुर-योजना मे देशी और विलायती स्वर-सामञ्जस्य की खासी कुशलता ने बगला मे एक नई भावानुभूति का समावेश किया है।

उनके गीत

माइकेल मधुसूदन ने जैसे विदेशी साहित्यिक आदर्श को आत्मसात् करके सम्पूर्णतया निजस्व ढग से बगला-कविता को एक नया रूप और नई चेतना दी थी, द्विजेन्द्रलाल राय ने ठीक वैसे ही विजातीय सुर को अपनी चेतना का अगीभूत बनाकर बगला-छन्द और गीतो मे उतारा था। इस प्रकार हम उन्हे वाणी-शिल्पी के बजाय एक कुशल सुर-शिल्पी कहे, तो अत्युक्ति न होगी। बगीय साहित्य-परिषद् के उद्घाटन के अवसर पर उनका प्रसिद्ध गीत—**'आजि गो तोमार चरणे जननी आनिया अर्घ्य करि मा दान'** गाया गया था। बगला के सुप्रसिद्ध मासिक पत्र 'भारतवर्ष' की स्थापना आपने ही की थी, किन्तु उसका पहला अक निकलने के पहले ही

आपकी जीवन-लीला समाप्त हो गई। उसीके पहले अक के लिए आपने अपना यह प्रसिद्ध गीत लिखा था : **ये दिन सुनील जलधि हइते उठिले जननी भारतवर्ष**। ऐसे उनके अनेक गीत लोक-मुख मे आज भी प्रचलित है, जिनमे देश-भक्ति की भावना कूट-कूटकर भरी है। उनकी लिखी नाट्य-कृतियो मे मुख्य है—'पाषाणी', 'सीता', 'प्रतापसिह', 'दुर्गादास', 'मेवाड-पतन', 'शाहजहाँ', 'नूरजहाँ', 'चन्द्रगुप्त', 'सिहल विजय', 'परपारे।'

क्षीरोदप्रसाद विद्याविनोद

उस समय के एक और कृती नाटककार है—क्षीरोदप्रसाद विद्याविनोद। जिस पौराणिक आधार पर गिरीशचन्द्र ने नाटको की भित्ति रखी थी, उसी मार्ग का अनुसरण करते हुए भी अपने को इन्होने उस प्रभाव से भरसक मुक्त रखा। पौराणिक चरित्रो की अवतारणा उन्होने अवश्य की, किन्तु उन चरित्रो को उन्होने अपने बुद्धि-विवेक से नये साँचे मे ढाला। रवीन्द्रनाथ की नाट्य-पद्धति का थोडा-बहुत प्रभाव उनमे दीखता है। उनके प्रमुख नाटको मे 'रघुवीर', 'नर-नारायण' और 'भीष्म' है।

इस युग की काव्य धारा

उन्नीसवी सदी के मध्य तक पुरानी काव्य-परम्परा की कई धाराएँ अवि-च्छिन्न रूप से बहती चली आ रही थी। जैसे वैष्णव पदावली, पौराणिक कविता और लोक-कथा-काव्य।

बैठकी गीत, तरजा, कवि-गान

भारतचन्द्र के 'अन्नदा मगल' की रीति और रामप्रसाद के गीतो से जो गीतात्मकता का प्रभाव फैला, उससे बैठकी गीत, तरजा और कवि-गान का प्रचलन खूब बढा।

देशात्म बोध

उसीमे समयानुसार देशात्म बोध की भावना घुलने-मिलने लगी और समाज-सरकार का आदर्श भी मिलने लगा। सावादिक ईश्वरचन्द्र गुप्त की चर्चा हम कर चुके है—भावो की इस सन्धि-वेला के वे ही समर्थ कवि

हुए। उन्हे हम पुरानी परिपाटी का अन्तिम और नई चेतना का प्रथम कवि कह सकते है। इनके गीतो मे वह गहराई तो नही पाई जाती, बहुत हद तक उनमे ग्राम्य-दोष भी है। व्यग्य और हास्य का पुट अधिक है और प्रचार-कामना से बहुत बार वह व्यग्य नाटक के विदूषक के समान निम्न स्तर तक उतर गया है। रचनाएँ बडी हल्की है, मगर उनमे अपने समाज और अपने देश के प्रति जो प्रेम की भावना गूँजी, उसने लोगो को अपनी ओर धडल्ले से आकर्षित किया और अनेक शब्द-शिल्पियो ने उसी पथ का अनुसरण किया। उनकी शिष्य-परम्परा भी बडी लम्बी रही। रगलाल, दीनबन्धु मित्र, कृष्णचन्द्र आदि उसी परम्परा के कवि हुए।

वैष्णव-काव्य का प्रभाव

वैष्णव-पदो की परम्परा तो उन्नीसवी सदी के अन्त तक चलती रही। विदेशी भाव-धारा के आकर्षण से सर्वथा नई साहित्य-पद्धति के समर्थ स्रष्टाओ तक को उस वेदी पर फल-फूल चढाने पड़े। वैष्णव-कविता की भाषा छन्द और रस-लोक मे आनन्द-आकर्षण की एक ऐसी मन्त्र-शक्ति रही कि नवीन भावावेश वालो के हृदय मे भी उसका आलोडन अजेय रहा। उन्नीसवी सदी के अन्तिम छोर मे जो अग्रेजी शिक्षित वाणी के साधक बगला-साहित्य के युग-निर्माता रहे, उन्होने भी वैष्णव-काव्य की रचना की। ऐसे नवीनता के उपासको मे बकिमचन्द्र, माइकेल मधुसूदनदत्त और रवीन्द्रनाथ रहे। अवश्य वैष्णव-पदो का जो मूल प्राण-धर्म था, वह इन कविताओ मे नही रहा। पाश्चात्य भाव-धारा के सस्पर्श मे आकर शिक्षित सम्प्रदाय ने चूँकि जीवन और धर्म को चेतना के नये आलोक मे देखना शुरू किया, इसलिए जिसे हम प्रकृत वैष्णवी वासना कह सकते है, वह चीज तो इनकी साधना मे नही रह सकी। जीवन, मन, तथा मन की विभिन्न वासनाओ को लोग इस गहराई से देखने लगे कि मनुष्यत्व उनके आगे महनीय हो उठा और देवत्व की महिमा मुरझा गई। अत. वैष्णव-पदो का आधारभूत जो कृष्ण-राधा का प्रेम रहा, वह नर-नारी के प्रेम की निविडता मे रूपान्तरित हो गया। उसमे जो आध्यात्मिकता थी, उसकी जगह

साधारण नर-नारी के प्रेम-वैचित्र्य ने ले ली।

लौकिक प्रेम

जिस कवि-गान की चर्चा हमने पहले की है, उन गीतो मे लौकिक प्रेम की ही बे-रोक बाढ आई है। जिस देश मे पहले यह सोचा जाता था कि कान्हा के बिना गीत ही सम्भव नही, वही लोक-प्रेम ने मानव-कण्ठ को प्रबल वाणी दी और बंकिम तथा रवीन्द्र तक जब वह धारा बह आई तो उसमे प्राणो की उस कल-कल ध्वनि की रक्षा नही हो सकी। ऐसा होना सम्भव भी नही, न ही स्वाभाविक था। क्योकि किसी रीति-पद्धति का अनुकरण कर लेने से ही वह भाव-परम्परा और प्राण-धर्म भी सुरक्षित रहेगा, यह सम्भव न था। अनुकरण के साथ आत्मा की निश्छल तन्मयता या भाव-योग न हो तो उसकी कृत्रिमता स्पष्ट है। उदाहरण के तौर पर काव्यगत बौद्धिक सहानुभूति की निरर्थक निर्जीवता देखी जा सकती है। महलो मे रहकर दूर किसी गॉव के भुखमरो की वेदना या ग्राम-गीतो के प्रेम को व्यक्त कर सकना सम्भव तो है, परन्तु उन गीतो मे प्राण की सजीव मार्मिकता नही लाई जा सकती। इन वैष्णव-गीतो में भी-रीति-रूप तो है, प्राणो का वह स्वरूप नही पाया जाता। फलस्वरूप इस परम्परा की ऐसी कविताओ को पिछली वैष्णव-कविता की श्रेणी मे किसी भी प्रकार नही रखा जा सकता।

बंकिम के वैष्णव पद

बंकिमचन्द्र ने अपने कुछ उपन्यासो मे पात्रो द्वारा वैष्णव-गीत का गान कराया है। 'विष वृक्ष' मे छद्म वेशधारी वैष्णवी तथा 'मृणालिनी' की गिरिजाया नाम की भिखारिन बंकिम-रचित वैष्णव-पद गाती है। किन्तु उनमे उस शैली के सिवाय वैष्णवता की वह बू नही मिलती। इसमे कृष्ण चरित्र की पिछली विशेषता पर मनुष्यत्व का आदर्श ही स्थापित हुआ है। बंकिमचन्द्र ने अपने उपन्यासो मे नायक-नायिका के प्रेम-सघटन के लिए ही ऐसे पदो का विशेषतया उपयोग किया है। मिसाल के तौर पर :

शुनतु श्रवण पथे मधुर बाजे,
राधे राधे राधे राधे विपिन माझे।
जब शुनन् लागि सइ, सो मधुर बोलि
जीवन ना गेलो ?
धायनु पिय सइ, सोहि उपकूले
लुटाइनु काँदि सइ श्याम पदमूले
सोहि पदमूले रई, काहे लो हामारि
मरण ना भेलो।

अर्थात् राधे-राधे की रट कानन मे अपने कानो से सुनी। लेकिन जब सुनती रही, तो यह प्राण क्यो न निकल भागा ? सखि, मै उस उपकूल तक पिया के पास पहुँची, उन श्याम चरणो मे लोटकर रोई, किन्तु उन्ही चरणो मे मरण क्यो नही हुआ ?

मधुसूदन का वैष्णव-काव्य

किन्तु सबसे बढकर ताज्जुब की बात है कि जो माइकेल मधुसूदनदत्त एडी से चोटी तक पाश्चात्य शिक्षा-सभ्यता के पारावार मे डूबे थे, जिन्होने पाश्चात्य ट्रेजिडी के अनुकरण पर 'मेघनाद वध' लिखा उन्होने 'ब्रजागना' मे वैष्णव-काव्य की साधना कैसे की।

तुलनात्मक विचार

किन्तु उनके काव्य से इतना तो स्पष्ट ही हो उठता है कि 'ब्रजाङ्गना' की राधा वास्तव मे मिसेज राधा है। वैष्णवता का चोला पहनाकर केवल पश्चिमीय प्रेम-गीत को बगला मे उतारा गया है। वैष्णव-कवियो की राधा पूर्वराग, अनुराग, मानाभिमान के बाद विरह की वेदना पर पहुँचती है, और वह विदग्धता भी ऐसी होती है कि प्राणो की गहरी वेदना कण्ठ से शब्दो मे फूट नही पाती। किन्तु मधुसूदन की राधा शुरू से ही विरह की मारी है और उसका विरह बे-तरह बोलता है। इसका नतीजा यह हुआ है कि मन की मार्मिक पीडा के बजाय फूत्कार ही ज्यादा मुखर हो आया है। उसमे प्रेम

की विह्वलता नही है—युक्ति, तर्क और रीति-नीति की चौकसी है। किन्तु सब-कुछ के बावजूद काव्य मे कवित्व-शक्ति की निपुणता का परिचय है। स्वरूप-चिन्तन के आदर्श की भिन्नता को छोडकर सृष्टि-कुशलता मे आँच नही आई है। जगह-जगह वर्णन बडे सुन्दर और स्वाभाविक है। जैसे, विरह-विह्वला राधा को सजाने के लिए सखियाँ फूल तोड लाई है। राधा कहती है, आखिर इतने फूल क्यो तोड लाई। मेघ से घिर जाने पर क्या रात तारो की माला पहनती है?

केनो एतो फूल तुलिलि सजनि
भरिया डाला,
मेघावृत होले परे कि रजनी
तारार माला?

पिजरे की मैना-जैसी अन्तर मे राधा के तडपन है। जहाँ वनमाली है, वही उड जाने की उतावली प्राणो मे है। कहती है.

देह छाडि जाइ चलि येथा वनमाली,
लागुक कुलेर मुखे कलकेर काली।

कही-कही हृदय की अनुभूति और सहज विश्वास का भी सुन्दर चित्र मिलता है। जैसे, राधा कहती है, चलो, तमाल के नीचे चले। जब वसन्त आन पहुँचा है, तो माधव भी जरूर आयँगे :

मुछिया नयन जल-चल लो सकले चल
शुनिबो तमाल तले वेणुर सुरव।
आइल बसन्त यदि आसिबे माधव॥

रवीन्द्र का वैष्णव-साहित्य

यद्यपि रवीन्द्र की वैष्णव-धर्म पर कभी आस्था नही रही थी, फिर भी उन्होने तरुण अवस्था मे 'ठाकुर भानुसिह की पदावली' लिखी। यह उनका छद्मनाम था। वैष्णव-साहित्य को कवि ने कोई मौलिक या विशेष दान दिया, यह तो नही कहा जा सकता, किन्तु वैष्णव-साहित्य से उन्होने बहुत-

कुछ पाया। उनकी परिणत अवस्था की अनेक रचनाओ पर, जो सचमुच ही श्रेष्ठ है, वैष्णव-साहित्य की स्पष्ट छाप है। बगला के छन्द को रवीन्द्र की बडी देन है और उस नवीन छन्द-योजना मे उन्हे वैष्णव-साहित्य से बडी प्रेरणा मिली। बगला के प्राचीन छन्दो मे पयार और त्रिपदी की ही बहुलता रही थी, रवीन्द्रनाथ ने उन्ही छन्दो मे वैचित्र्य से एक अभिनवता का समावेश किया। जैसे, गोविन्ददास का यह छन्द .

शरद् चन्द पवन मन्द
विपिने भरल कुसुम गध
फुल्ल मल्लिका मालति युथि
मत्त मधुकर भोरणि।

रवीन्द्रनाथ ने इस तरह उतारा :

अगे चारु नील वास
हृदये प्रणय कुसुम राश
हरिण नेत्रे विमल हास
कुञ्जवने जे आव लो।

जयदेव के निम्न छन्द ने कवीन्द्र को बहुत प्रभावित किया .

पतति पतत्रे विचलित पत्रे
शंकित भवदुपयानम्,
रचयति शयनम् सचकित नयनम्
पश्यति तव पन्थानम्।

उनके अनेक पद इसी अनुकरण पर बने। जैसे .

नील आकाशे तारका भासे
यमुना गावत गान,
पादप मरमर, निर्झर झर-झर
कुसुमित बल्लि वितान।

वैष्णव-कवियो के इस छन्द-वैचित्र्य, भाषा-सौष्ठव और रस-माधुरी ने तरुण रवीन्द्र के प्राणो को झकझोर दिया था और रूपगत अनुकरण तो

उन्होंने सहज ही कर लिया था, किन्तु वह रसानुभूति उनमे गहराई तक नही उतर सकी। 'गीताञ्जलि' आदि की बाद की कविताओ मे रस की परिपक्वता का निखार देखने को मिलता है।

भानुसिंह की पदावली

'भानुसिंह की पदावली' के पदो मे भावो के बजाय रूप-रचना है, ध्वनि नही, प्रतिध्वनि है। फिर भी कही-कही खासी मार्मिकता और रस-माधुर्य है। जैसे, राधा दु:ख से कहती है :

इथि छिल आकुल गोप नयन जल
कथि छिल ओ तव हासि।
इथि छिल नीरव वशी वट तट
कथि छिल ओ तव बाँशि। आदि।

मधुसूदन और नवयुग की सूचना

मधुसूदन दत्त की प्रतिभा से बगला-काव्य मे एक नये युग की सूचना हुई। इनकी कविता मे देशी-विदेशी भावो का एक अपूर्व समन्वय मिलता है। बगला-भाषा के लालित्य और स्वर-बहुलता के कारण उसमे ओज-पूर्ण कविता की रचना सम्भव नही थी। कवि मधुसूदन का ध्यान इस पर गया। उन्होने भाषा की इस ओजहीनता को दूर करने के लिए सस्कृत के शब्द-चयन और नामधातु की सृष्टि की।

नया छन्द-निर्माण

जिस पयार छन्द का पहले प्रचलन था, वह भी ओज-प्रकाश के अनुकूल नही पडता था। इसमे आठवे और चौदहवे वर्ण पर यति होती है और अन्तिम यति मे तुक का मेल होता है। इस बन्धन मे ओज-विकासी सस्कृत-शब्दो का प्रयोग बहुलता से नही किया जा सकता था, न हो अन्तिम तुक को मिलाने की बाधा से यह सम्भव था कि भावो का निर्वाह किया जा सके। मधुसूदन ने ये सारी बाधाएँ दूर हटाकर बगला मे वीर रस के महाकाव्य की सफल रचना की। पयार मे उन्होने विषम पद का प्रवर्त्तन किया।

वर्ण-मात्रा वही रही, अन्त के तुक का मेल उन्होने हटा दिया और आठवे अक्षर पर यति हो ही, इस अनिवार्यता की बाधा भी दूर हटा दी। उनके इस अमित्राक्षर से काव्य-रचना मे एक नई राह निकली और बाद के अनेक यशस्वी कवियो ने इसका अनुसरण किया। मधुसूदन ने इस छन्द मे सबसे पहला काव्य 'तिलोत्तमा सम्भव' लिखा, उसके बाद इसमे उनके प्रसिद्ध काव्य 'मेघनाद वध' और 'वीरागना' लिखे गए।

अग्रेजी प्रभाव

इसमे सन्देह नही कि वे विदेशी भावो से बे-तरह प्रभावित थे, किन्तु उनकी रचनाओ मे निजस्वता की कही कमी नही है। छात्र-जीवन मे वे बडे मेधावी रहे थे और उनके बडी महत्त्वाकाक्षा थी। उस समय अग्रेजी भाषा और साहित्य का प्रताप देशी मस्तिष्क मे बडा रौब जमा रहा था। उसीके चक्कर मे मधुसूदन की भी आस्था धर्म, भाषा और अपने समाज से उठ गई। वे ईसाई हो गए। पहले एक स्कॉट औरत से उन्होने शादी की, फिर उसे तलाक देकर एक फ्रासीसी महिला से विवाह किया। अग्रेजी साहित्य का मोह उन्हे इस बुरी तरह हो गया था कि शुरू-शुरू मे उन्होने अग्रेजी मे ही रचना आरम्भ की तथा 'कैप्टिव लेडी', और 'विजन्स ऑव दि पास्ट' लिखा। जब इसमे ज्यादा आगे बढने की गुञ्जाइश उन्हे नही दिखाई दी, तो फिर मातृभाषा की ओर लौटे। विदेशी साहित्य के उस प्रभाव का बहुत बडा लाभ उन्होने बगला-साहित्य को दिया। सानेट-चतुर्दश पदी—जातीय कविता बगला मे उन्होने ही शुरू की।

भारतीय आदर्श

विदेश भी वे गये थे और वहाँ वर्षो रहे। इस सबके बावजूद उनकी अन्तरात्मा मे भारतीयता के लिए नये सिरे से गाढा प्रेम उपज आया था। भारत की सीता और राधा ने उनके हृदय मे ऊँचा स्थान बना लिया था। काशीराम और कृत्तिवास के काव्य उन्हे प्रिय हो उठे थे। वर्साइ मे जब उन्होने 'चतुर्दश पदी' की रचना की, तो ये ही काव्य और यही चरित्र

उनके मन-मस्तिष्क मे विराज रहे थे। अपनी महाकाव्य-रचना मे उन्हे रामायण की कथा ने ही अनुप्राणित किया। राधा के लिए उनकी क्या धारणा थी, यह उनके द्वारा राजनारायण बसु को लिखे गए एक पत्र से पता चलता है :

"**आइ थिंक यू आर रादर को लु टुआर्ड्स दि पूअर लेडी ऑफ ब्रज। पुअर मैन! ह्वेन यू सिट् डाउन टु रीड पोइट्री लीव एसाइड ऑल रिलीजस बायस। बिसाइड्स, मिसेज राधा इज नॉट सच ए बैड वोमैन आफ्टर आल। इफ शी हैड ए 'बार्ड' लाइक योर हम्बुल सर्वेंट फ्रॉम दि बिगिनिंग, शी वुड हैव बीन ए वेरी डिफरेंट कैरेक्टर। इट इज दि वाइल इमेजिनेशन दि पोएट स्टर्स दैट हैज पेण्टेड हर इन सच कलर्स।**"—यानी, मेरा खयाल है, ब्रज की बेचारी राधा पर तुम कुछ विरूप हो, लेकिन जब काव्य-पाठ को बैठो, तो मन से धार्मिक पक्षपात को दूर हटा दिया करो। फिर ऐसी भी बात नही कि राधा वास्तव मे वैसी बुरी रही अगर तुम्हारे इस सेवक-जैसा शुरू से ही उन्हे एक चारण मिल गया होता तो उनका चरित्र और ही कुछ होता। उनके चरित्र को यह रग कवियो की जघन्य कल्पनाओ ने ही दिया है।

और इसीलिए 'ब्रजागना' मे उन्होने राधा को अपने ढग से चित्रित किया।

चतुर्दशपदी या सानेट

अमित्राक्षर छन्द मे मधुसूदन के काव्य केवल लोकप्रिय ही नही हुए, बल्कि उनसे काव्य-रचना की एक नई दिशा भी उद्घाटित हुई। किन्तु उन बडे काव्यो से कही अधिक रस-निविडता उनकी चतुर्दशपदियो (सानेट) मे है। चतुर्दशपदी के आदि-कवि इटली के कवि पेट्रार्क है। इनमे चौदह पक्तियाँ होती है—पहली आठ पक्तियो मे रसमय वक्तव्य और बाद की छ पक्तियो मे उसीका मार्मिक सक्षिप्त विस्तार रहता है। इस छोटे दायरे मे वक्तव्य का मार्मिक प्रकाश सानेट की अपनी विशेषता है और इसका सफल निर्वाह बडी रसज्ञता चाहता है।

गीति-कविता

अपने भावमुखर उन गीतो मे मधुसूदन की वह रसज्ञता झलकती है। काव्यो मे जैसे उनके मन के एकान्त कोने रूप नही पा सके थे और भावो मे गीतमुखर हो उठने की एक बेताबी थी। एक पत्र मे उन्होने उपर्युक्त वसु महोदय को लिखा था . **"बट आइ सपोज़, आइ मस्ट बिड् एड्यु टु हिरोइक पोइट्री आफ्टर 'मेघनाद'। ए फ्रेश एटेम्प्ट वुड बि समथिंग लाइक ए रिपिटीशन। बट देयर इज दि वाइट फील्ड ऑफ रोमैण्टिक एण्ड लिरिक पोइट्री बिफोर मी एण्ड आइ थिंक आइ हैव ए टेंडेंसी इन् द लिरिकल वे।"** अर्थात्, मेरा ऐसा खयाल है कि 'मेघनाद' के बाद मुझे वीर रस की कविताओ को विदाई देनी पडेगी। इसी तरह की कोई दूसरी कोशिश पुनरुक्ति ही होगी। मुझे अपने आगे रोमाटिक और गीति-कविताओ का विस्तृत क्षेत्र दिखाई पडता है और मुझे लगता है, मुझमे उसकी अभिरुचि है।

और सचमुच ही गीति-कविताओ मे उन्होने कृतित्व का परिचय दिया। उन कविताओ मे उनके एक गोपन मन का सहज परिचय मिल जाता है। देश, जाति, श्रद्धेय व्यक्ति एव अपने नदी-पर्वत-प्रान्तर के प्रति अकपट प्रेम उन कविताओ मे प्रस्फुटित हुआ है।

उदय और अस्त

माइकेल मे अद्भुत प्रतिभा थी और प्रतिभा का वैविध्य अद्भुत था—किन्तु प्रतिभा के अनुरूप उन्हे सफलता नही मिली। इसके कारण कई है, पर प्रमुख कारण यही है कि उन्हे प्रतिभा के स्वरूप प्रकाश का उपयुक्त अवसर नही मिला और अपनी प्रतिभा को चीन्हकर उसके प्रति सजग होने का मौका भी उनके हाथ नही आया। यही कारण है कि उनकी प्रतिभा ने अपनी अनुपम सृजन-शक्ति का तो भरपूर परिचय दिया, पर उसे इसकी पहचान शायद नही रही कि उसका यथार्थ कर्त्तव्य कौन-सा था। इसलिए जैसा कि कवि ने स्वय कहा है, बगला-साहित्य मे एक धूमकेतु की तरह उदित होकर धूमकेतु के समान ही वे सहसा अन्तर्धान हो गए।

मधुसूदन के अनुयायी

मधुसूदन ने बंगला-साहित्य को नया जन्म दिया और अच्छी-अच्छी प्रतिभाओं को नये रूप से अनुप्राणित किया। उनके अनुकरण पर रचनाएँ तो बहुतों ने कीं, पर हेमचन्द्र और नवीनचन्द्र सेन ही किसी हद तक उस लीक पर चल सके। विषय-वस्तु के निर्वाचन और छन्दों की सुगठित योजना में हेमचन्द्र ने अच्छा कृतित्व दिखाया है, जो कि तुकहीन पयार और पयार-त्रिपदी में ही उन्होंने काव्य रचे। हेमचन्द्र की रचनाएँ कई हैं— 'चिन्ता तरंगिणी', 'वीरबाहु', 'वृत्र संहार', 'दश महाविद्या' आदि उनमें से प्रमुख हैं। 'वृत्र संहार' सबमें सुन्दर बन पड़ा है। इसे 'मेघनाद वध' का लगभग अनुकरण ही कहना चाहिए। पात्रादि का निर्वाचन और चरित्र-चित्रण तक ठीक उसी ढंग पर किया गया है, जैसा कि 'मेघनाद वध' में है। 'टेम्पेस्ट' और 'रोमियो जूलियट' के आधार पर इन्होंने दो नाटक भी लिखे थे। 'छायामयी' नाम की रचना उन्होंने 'डिवाइन कॉमेडी' के अनुसार की है, इसलिए उसमें विविध नरकों का ही वर्णन है।

नवीनचन्द्र सेन

नवीनचन्द्र सेन उन्हींके समसामयिक कवि थे। 'पलासी का युद्ध', 'रैवतक', 'कुरुक्षेत्र', 'प्रभास', 'आकाशरंजिनी' आदि उनकी प्रधान रचनाएँ हैं, जिनमें 'पलासी का युद्ध' बड़ा प्रसिद्ध हुआ है। कुरुक्षेत्र-युद्ध और कृष्ण-चरित्र की कवि ने एक सर्वथा नई कल्पना की है। आर्य-अनार्य के संघर्ष और दोनों का मेल—यही उनके कुरुक्षेत्र का विषय है। नवीनचन्द्र के काव्य में जहाँ-तहाँ चमत्कार का सुन्दर समावेश है।

गीत-कवि बिहारीलाल

बंगला-साहित्य के सर्वप्रथम और श्रेष्ठ कवि बिहारीलाल हैं। रवीन्द्र उनकी कविताओं से बहुत अनुप्रेरित हुए थे और उनका यह ऋण उन्होंने स्वीकार किया था। कई लेखों में इस बात की उन्होंने चर्चा की है; जैसे, वर्तमान समालोचक (रवीन्द्र) ने कभी 'बंग सुन्दरी' और 'शारदा मंगल' के

कवि (बिहारीलाल) से काव्य-शिक्षा की चेष्टा की थी, इसमे वह कहॉ तक कामयाब हुआ है, नही कहा जा सकता, किन्तु यह स्थायी शिक्षा हृदय मे गड गई है कि भाषा-सौष्ठव काव्य-सौन्दर्य का एक प्रधान अङ्ग है। छन्द और भाषा की ढिलाई कविता के लिए घातक होती है ।

सौन्दर्य के गायक

बिहारीलाल वास्तव मे सौन्दर्य के कवि थे। उनका 'शारदा मगल' सौदर्य-साधना की अपूर्व कृति है। इसमे श्री के अर्चन की एक नई ही पद्धति हमे देखने को मिलती है। 'जननी', 'नन्दिनी', 'प्रणयिनी' प्रत्येक रूप मे उन्होने शारदा की कल्पना की है और 'दास्य', 'वात्सल्य' आदि अनेक भावो मे उनकी उपासना। इन कविताओ मे रूप और गीतिमत्ता एकाकार है। भाषा मे सौन्दर्य, माधुर्य और प्रवाह का सुन्दर समावेश। छोटी-छोटी पक्तियो मे सादगी है, किन्तु जोर है। जैसे :

प्राणेर भेतर थेके के येन आमारे डाके,
भूलिवार नय, तबू भूले येन गेछि काके।

मेरे प्राणो के भीतर से मानो कोई मुझे पुकारता है। लगता है वह भूलने योग्य नही, फिर भी किसे तो मै भूल गया हूँ।

आनन्द की मूर्ति

कवि को चारो ओर सौन्दर्य का अनन्त प्रकाश दिखाई पडता है और उस प्रकाश मे आनन्द की एक अक्षय मूर्ति विराजती है :

अहो ! विश्व परकाशि ।
उदार सौन्दर्य-राशि ।
जले स्थले आकाशे सदाइ विराजित,
ये दिके फिरिया चाइ
सौन्दर्यें डुबिना जाइ
अत्युल्लासकरी, अयि,
परम आनन्दमयी ।
तुमि माँ, काति रूपे सर्वभूते विभाषित।

अर्थात् विश्व को प्रकाशित करके उदार सौन्दर्य-राशि जल, स्थल, आकाश मे विराजित है। जिधर आँखे दौडाता हूँ, सौन्दर्य मे डूब जाता हूँ। अत्यन्त उल्लास से भर देने वाली, आनन्दमयी, तुम कौन हो जो सभी भूतो पर कान्ति बनकर विहँसती हो।

उनकी दृष्टि मे नारी

इस सौन्दर्य, आनन्द और प्रेम का एक समन्वित स्वरूप उन्होने नारी मे देखा था। कवि ने लिखा, तुम्हारी मूर्ति धरकर मेरे घर यह कौन आया है। तुम कौन हो, जिसने यह नारी का रूप लिया है? चीन्हते हुए भी नही चीन्ह पाता, तुम्हारे उदार लावण्य से सारा ससार भरा है। यह विश्व की ज्योति और कुछ नही तुम हो, हृदय-कमल पर तुम सरस्वती जैसी विराजमान हो। प्रेयसि, तुम्हे प्रेम, स्नेह और भक्ति मे भरा मै देखता हूँ .

तोमार मूरति धोरे
के एसे छे मोर घरे?
के तुमि सेजे छो नारी?
चिनेओ चिनिते नारि,
उदार लावण्य तव
भरिया रोये छे भव
तुमिइ विश्वेर ज्योति
हृद्पद्मे सरस्वती
प्रेम स्नेह भक्ति भावे देखि अनिवार
प्रेयसी आमार।

रवीन्द्र की भूमिका

गीत का जो अश्रान्त स्रोत पीछे रवीन्द्रनाथ की सृष्टि से प्रभावित हुआ, कह सकते है, बिहारीलाल मे उसीकी भूमिका थी। एक आलोचक ने लिखा है . **अग्रेजी साहित्य मे पोप के आविर्भाव से जो एक पेशेवर भाव बँधता चला आ रहा था, क्रैप और कॉपर के आविर्भाव से उसका खण्डन**

हुआ। उसके बाद उसके खण्डन में शेली, कीट्स, बाइरन, वर्ड्सवर्थ ने तो हद ही कर दी। मेरा खयाल है, बंगला-साहित्य मे बिहारीलाल का आविर्भाव बहुत-कुछ वैसा ही है।

बिहारीलाल ध्यान और गान के कवि थे। अपनी धुन और अपनी लगन मे प्रचार-प्रसार से दूर उन्होंने साहित्य मे सौन्दर्य और प्रेम के अनोखे गीत गाये, किन्तु अचरज है कि ऐसे कवि की साहित्य मे कभी धूम नही मची। गीति-कविता के उस अश्रान्त और एकान्त गायक की वैसी शुहरत नही हुई, जिसने रवीन्द्र-जैसी प्रतिभा के महल के लिए नीव का काम किया। उन्हे गुरु के रूप मे मानने वाले रवीन्द्र ने उन्हे 'सुबह का पंछी' कहा है। अपना गीत खुद गाकर वह चला गया, उस झुटपुटे मे सोते-जागते की अलसाई दशा मे किसी ने सुना, किसी ने नही। कवि अक्षयकुमार ने, जो उस गीत-धर्मी कविता से प्रेरित हुए थे, ठीक ही कहा है .

एसे छिलो शुधु गाइते प्रभाती
ना फुटिले उषा, ना पोहाते राती
आँधारे आलोके प्रेमे मोहे गाँथि
कुहरिले धीरे-धीरे।
घूम घोरे प्राणी, भावि स्वप्न वाणी
घुमाइल पार्श्व फिरे।

यानी वह सिर्फ प्रभाती गाने आया था। जब उषा ठीक से खिल नही पाई, रात पूरी बीती नही, उस ज्योति-अँधेरे की सन्धि मे वह प्रम-मोह को गूँथकर प्रभाती गा गया। निंदियारे लोगो ने समझा कि यह स्वप्न की वाणी है और वे करवट बदलकर सो गए।

रवीन्द्रनाथ

गीति-कविता और रोमाण्टिकता की उसी पृष्ठभूमि पर जिस कालजयी प्रतिभा ने दर्शन दिये, वह थी रवीन्द्रनाथ की। ऐसी बहुमुखी, वैविध्यमयी और समर्थ प्रतिभा सदियो मे किसी देश को वरदान-रूप मे मिलती है। वह एक ऐसी प्रतिभा थी, जिसमे साहित्य की सभी दिशाएँ एकीभूत हो गई

थी। साहित्य का ऐसा कोई अग नही था, जिस पर उन्होने अपनी कुशलता की मुहर न लगा दी हो।

जीवन और कीर्त्ति

उनके बारे मे तो उन्हीके शब्दो मे कहा जा सकता है कि अपनी कीर्ति से तुम कही महत् हो, इसीलिए तुम्हारे जीवन का रथ बार-बार तुम्हारी कीर्त्ति को पीछे छोड जाता है :

तोमार कीर्त्तिर चे ये तुमि ये महत्
ताइ तव जीवनेर रथ
पश्चाते फेलिया जाय कीर्त्तिरे तोमार
बारम्बार।

विराट् व्यक्तित्व

यह उसी प्रतिभा का दम था कि एक प्रान्तीय भाषा की साहित्य-साधना को विश्व-साहित्य के श्रेष्ठ आसन पर आसीन करा दिया। उसकी उदार विस्तृति सहज मे शब्दो मे नही आँकी जा सकती। एक बार उन्होने ठीक ही कहा था, क्या तुम यह समझते हो कि तुमने मेरा आदि-अन्त पा लिया है? शुरू से आखिर तक खत्म करके मुझे पढी हुई पोथी-सा फेक दिया है। नही, इतने प्राण-गान मुझमे है कि अन्त पा सकना सम्भव नही :

तुमि कि कोरेछो मने
जेने छो पेचे छो तुमि आदि अन्त मम।
फेलिया दिया छो मोरे
आदि अन्त शेष कोरे
पडा पुन्थि सम?

काव्य-रचना की रूपरेखा

साहित्य के इस प्रकाण्ड व्यक्तित्व का परिचय बहुत-कुछ हो सकता है, पर उनका असली परिचय तो कवि-परिचय ही है। काव्य मे उन्होने वैचित्र्य की ऐसी रगीनी भर दी है कि उसमे न केवल एक युग की सारी प्रवृत्तियाँ,

सारी शैलियाँ समाहित हो गई है, बल्कि उसमे युगातीत भी रूपमय हो उठा है।

प्रमुख प्रवृत्तियाँ

उनके काव्य की मुख्यतया तीन दिशाएँ है—प्रकृति, प्रेम और आध्यात्मिकता। ठीक इसी तरह रचनाओ की तीन प्रवृत्तियाँ है—अन्तर्मुखी, बहिर्मुखी और ऊर्ध्वमुखी। उनकी पहली कविता 'वन फूल' से लेकर 'छवि-ओ गान' तक की रचनाओ मे हम स्पष्ट रूप से यह देख सकते है कि भावो की उद्दामता अनुकूल भाषा की खोज मे आतुर है। फलस्वरूप जो आन्तरिक आवेग प्रकाश-विह्वल थे, वे अस्पष्ट और कुण्ठित रह गए है। 'कडि ओ कोमल' से 'खेया' तक की रचनाएँ बहिर्मुखी प्रवृत्ति की द्योतिका है। आँखो के आगे जो धुँधलका था, वह कट गया है और जीवन तथा जगत् के सघर्षों के अन्तराल मे जो सौन्दर्य और आनन्द की लक्ष्मी मृदु-मधुर मुस्कराती है, उसे अन्तर्दृष्टि देख सकी है और उसकी उपयुक्त प्रतिष्ठा के अनुकूल वाहन जैसे कवि को मिल गया है। शुरू मे ही कवि कहते है, मै समझ रहा हूँ कि मेरे निशा-स्वप्न का नशा जाता रहा है, जो माला थी, उसके फूल बिखर गए है और धागा रह गया है.

बुझेछि आमार निशार स्वपन होये छे भोर।
मालाखानि छिलो फूल गुलि गेछे रोये छे डोर॥

जगत् और जीवन की आस्था

'खेया' के बाद से कवि की प्रवृत्ति ऊर्ध्वमुखी हो गई है और उनमे आध्यात्मिकता का स्पष्ट और गाढा रग चढता गया है। किन्तु उसे ऊर्ध्व-मुखी कहने से कही यह भ्रम न हो कि परकाल की चिन्ता कवि को बुरी तरह पा बैठी और वे जगत् से ऊपर के लोक की चिन्ता मे निमग्न हो गए। रवीन्द्र की सबसे बडी विशेषता यही रही है कि वे जीवन और जगत् से कभी विमुख नही हुए। उनका एक प्रसिद्ध गीत है :

मोरिते चाहिना आमि सुन्दर भुवने,
मानवेर माझे आमि बाँचि वारे चाइ ।

जिस परम सत्ता के लिए उनके चित्त मे आकुलता थी, उसे उन्होने सृष्टि के सुख-दु.ख मे ही व्याप्त देखा है । 'नैवेद्य', 'गीताञ्जलि,' 'बलाका' आदि की अगणित कविताओ मे विभिन्न रूप से यह ध्वनि मुखरित है । उन्होने मनुष्य और माटी की धरती को कभी छोटा नही देखा, न देवता और स्वर्ग को इनसे कभी बडा देखा । वे धरती और मानव के गर्व-गाथा-गायक रहे ।

रवीन्द्र की काव्य-कृतियाँ इतनी है और सृष्टि के क्षितिज पर इतनी विभिन्न दिशाएँ आ मिली है कि कई-कई ग्रन्थो मे उन तथ्यो और सत्यो की झाँकी सम्भव न होगी । अतएव कृतियो का नाम न गिनाकर उनके काव्य-व्यक्तित्व की कुछ खास विशेषताओ का परिचय देना ही अच्छा होगा ।

रोमाण्टिक काव्य

रवीन्द्रनाथ को हम रोमाण्टिक कवि कह सकते है । रोमाण्टिकता की निश्चित-निर्दिष्ट व्याख्या कर सकना सम्भव नही । विचारकगण भी इसका कोई बुद्धिग्राह्य निर्देश नही दे सके है—इसलिए नाना मुनियो के नाना मत है । जहाँ तक मेरा खयाल है, प्रत्येक प्रकार के सौन्दर्य मे एक अजाने विस्मय की प्रधानता होती है—उसी विस्मय का सौन्दर्य मे योग रोमाण्टिकता है । इसीलिए इस कोटि की रचनाओ मे एक धूपछाँही सुषमा होती है । ऐसे काव्य के प्रधान लक्षण तीन होते है, अतीन्द्रियता, सौन्दर्योपलब्धि और आनन्दोपभोग । रवीन्द्र की कविताओ मे ये सारे-के-सारे गुण मौजूद है । अतीन्द्रियता के कारण लोगो ने उन्हे रहस्यवादी कवि भी कहा है । यह रहस्यवाद अपने यहाँ कोई नई चीज नही । उपनिषदो से लेकर आज तक जाने कितने रूपो मे उसकी साधना होती रही है । उपनिषद्, सूफी कवि, कबीर, बगाल के बाउल-सगीत से रवीन्द्रनाथ की खास रुचि थी और उन सबका एक अलक्षित प्रभाव उन पर पडा । इस वाद की विशेषता है अव्यक्त अनन्त जीवन से खण्ड मानव-जीवन के अस्पष्ट सम्बन्ध

का सकेत। अनन्त के सत्य, शिव और सुन्दर मे से कवि सुन्दर के ही उपासक थे और सत्, चित्, आनन्द मे आनन्द के प्रति आस्थावान्। यही कारण है कि उनकी कविता मे चित्र, सगीत और भाव की समान रूप से अर्चना मिलती है।

रचनाओ को देखते हुए वे वस्तु-निरपेक्ष कवि थे। किन्तु इस कोटि की कवि-परम्परा मे जहाँ लोगो ने भाव और रस के सहारे ही रस-बोध का परिचय दिया है, कवि के व्यक्ति को नेपथ्य मे ही रखा है, वहाँ रवीन्द्र ने अपने को ही मुख्यता दी है। काव्य से कवि ही मुख्य हो उठे है।

गीतिमत्ता

दृष्टि की उदारता के कारण रवीन्द्रनाथ ने अपने को विदेशी प्रभाव से वञ्चित रखने की जान-बूझकर कभी कोई चेष्टा नही की, परन्तु अपनी चिन्ताधारा पर उन्होने आँच नही आने दी है। गीतिमत्ता उनका एक प्रधान गुण है और ससीम और असीम का मेल स्वभाव।

ससीम और असीम का मेल

'जीवन-स्मृति' मे उन्होने स्वय कहा है, मुझे तो ऐसा लगता है कि मेरी काव्य-रचनाओ की मुख्यतः एक ही दिशा है और उसका नाम दिया जा सकता है, ससीम मे असीम के मिलन की साधना। यह उन्होने सिर्फ कहा ही नही है, गद्य मे, पद्य मे, हजारो बार, हजारो तरह से इसे प्रकाश देने की कोशिश की है। 'गीताञ्जलि' मे एक जगह वे कहते है :

सीमार माझे असीम तुमि
बाजाओ आपन सुर,
आमार मध्ये तोमार लीला
ताइ एतो मधुर।

हे असीम, तुम सीमा मे अपना सुर छेडा करते हो। इसीलिए मुझमे तुम्हारी लीला इतनी मधुर लगती है।

उनकी दूसरी प्रसिद्ध कविता मे रूप और भाव की एकात्मता मे इसी

ससीम और असीम के मिलन की बात कही गई है। धूप अपने को गन्ध मे बिखेरने को लालायित है और गन्ध धूप मे घुल-मिल जाना चाहती है। सुर छन्द मे बँधने को आकुल है और छन्द सुर मे बिखर-निखर जाने को। भाव रूप मे स्वरूप पाना चाहता है, और रूप भाव मे विस्तृति चाहता है। असीम ससीम के निविड सग का आकाक्षी है और ससीम असीम मे खो जाना चाहता है .

धूप आपनारे मिलाइते चाहे गन्धे,
गन्ध से चाहे रूपेरे रहिते जुडे।
सुर आपनारे धरा दिते चाहे छन्दे
छन्द फिरिया छूटे येते चाय सुरे।
भाव येते चाय रूपेर माझारे अग
रूप येते चाय भावेर माझारे छाडा।
असीम से चाहे सीमार निविड सग
सीमा होते चाय असीमेर माझे हारा।

अन्य रोमाण्टिक कवियो से विशेपता

कवि ने इस द्वन्द्व की मीमासा बहुत प्रकार से और अपने ढग से की है। उन्होने अतीन्द्रिय को इन्द्रिय-ग्राह्य परिवेश मे भी लाकर इन्द्रियगोचर को अरूप-अतीन्द्रिय की सीमा मे उन्नीत किया है। इससे विचित्र वर्ण-विन्यास मे धूप-छॉह की अपूर्व शोभा प्रकट हुई है, उनका काव्य दर्शन हो उठा है, और दर्शन हो उठा है काव्य। इसी विशेषता के कारण गीतधर्मी रोमाण्टिक कवि होते हुए भी उनकी रोमाण्टिकता वह नही है, जो अग्रेजी कविता से सीधे अपने यहॉ आई। अग्रेजी के जितने भी श्रेष्ठ रोमाण्टिक कवि है, सबकी विशेषताएँ रवीन्द्र मे आत्मसात् है। जैसे कीट्स की सौन्दर्य-चेतना, शेली की अतीन्द्रियता, वर्ड्सवर्थ की वस्तुगत आनन्दोपलब्धि, कॉलरिज की अप्राकृतिक अनऐहिकता—ये सारी बाते रवीन्द्र-रचना मे है। किन्तु इनके अतिरिक्त भी बहुत-कुछ उनके काव्य-भण्डार मे सचित है। उन्होने अन्य रोमाण्टिक कवियो की तरह मानव-मन

पर प्रकृति के प्रभाव को ही केवल कुबूल नहीं किया, बल्कि आत्मचेतना और वेदना में उसे एकाकार भी कर दिया है। उनकी अनेक कविताओं में प्रकृति के प्रति यह निगूढ आत्मीयता सुन्दर रूप से व्यक्त हुई है।

उनकी कविता में जो वैभव विचित्रता का है, वह इतने सक्षेप में कहा नहीं जा सकता। मोटा-मोटी यही कहा जा सकता है कि ऐसा विषय शायद ही मिले, जिसे वे छोड गए हों।

गीत-साधना

काव्य पर विचार करते हुए उनकी काव्यगत सगीत-साधना की भी थोडी-सी चर्चा आवश्यक है, इसलिए कि सगीत को उन्होंने नये रूप में पुनरुज्जीवित किया है। आज आप पायेंगे कि रवीन्द्र-सगीत की बगाल में धूम-सी मच गई है और उसकी एक निजस्वता भी है। केवल गीत के लिए भी स्वतन्त्र रूप से उन्होंने गीत लिखे और काव्य में भी नये सिरे से सगीत-योजना की।

सगीत पर विदेशी प्रभाव

कई लोग इसे मात्र विदेशी प्रभाव कहते हैं। विदेशी प्रभाव को इन्कार करने की तो गुञ्जाइश नहीं, किन्तु उसमें उनका अपनापन भी है। ठाकुर-परिवार में सगीत-चर्चा जीवन का अग हो गई थी। केवल सत्रह साल की उम्र में जब रवीन्द्र विलायत गये, तो अग्रेजी स्वर-योजना के आकर्षण से वे प्रभावित हुए। उस समय उनके कुछ अग्रेजी गीत तो जबान पर लग गए थे। जैसे टॉम मूर की आइरिश मेलोडीज की पक्तियाँ :

ओह् , दि हार्ट दैट हैज ट्रूली लव्ड, नेवर फॉरगेट्स
बट ऐज ट्रूली लव्स ऑन टु दि क्लोज
ऐज दि सन् फ्लावर टर्न्स टु हर गॉड ह्वेन ही सेट्स,
दि सेम लुक ऐज शी टर्न्ड ह्वेन ही रोज ।

अथवा 'गुडबाइ स्वीटहर्ट' की पक्तियाँ :

दि सन इज़ अप, दि लार्क इज सोरिंग
लाउड स्वेल्स दि साँग ऑव चैंटिक्लीयर,

दि ल्योटेट बाउड्स ओवर अर्थ्स सॉफ्ट फ्लोरिंग
येट् आइ ऐम हेयर—ये ट् आइ ऐम हेयर !

सगीत मे शास्त्रीयता

किन्तु परवर्त्ती काल मे अपनी अनेक गीति-नाटिकाओ और स्वतन्त्र गीतो मे उन्होने जो गीत-योजना की, रूप-माधुर्य और स्वर-सौष्ठव मे उनमे कवीन्द्र के कृतित्व की निश्चय ही एक निजस्वता है। उनमे तान-ताल की परिपाटी का भी निर्वाह है और अस्थायी अन्तरा, सञ्चारी, आभोग आदि गान के अगो का भी। 'वीथिका', 'गीतिमाल्य', 'गीत वितान', 'ऋतुरग', 'वर्षा मगल' आदि मे उनकी गीति-विशेषता कूट-कूटकर नरी है। उन्होने कहा है :

गानेर भीतर दिये यखन देखि भुवन खानि ।
तखन तारे जानि आमि तखन तारे चिनि ।

नाटिकाएँ

रवीन्द्रनाथ ने नाटिकाएँ और प्रहमन भी अपने ढग के और अनेक लिखे है। किन्तु चूँकि उनका मानसिक गठन ही गीतधर्मी रहा, इसलिए स्वाभाविकतया नाट्यगत शास्त्रीय आदर्शों की उनमे रक्षा नही हो सकी है, बल्कि एक गीत-सवादमय नया सरस साहित्य ही उनके नाटक हो उठे है। उन नाटको मे विशेषता के अनुमार कुछ सगीत-नाट्य, नृत्य-नाट्य, तो कुछ कथा-नाट्य और काव्य-नाट्य हो उठे है। गीतो की प्रधानता ही विशेष प्रबल है और सगीतधर्मी उनका कवि-मन सबके ऊपर तिर आया है। 'जीवन-स्मृति' मे उन्होने स्वय लिखा भी है—"वाल्मीकि-प्रतिभा और काल-मृगया-जैसे गानो के सूत्र मे नाट्य की माला है, वैसे ही 'माया का खेल' नाट्य के सूत्र मे गान की माला है। वे घटना-सूत्र के बजाय हृदय के आवेग पर ही अवलम्बित है। वास्तव मे 'माया का खेल' की रचना के समय गीत-रस से ही मानस अभिषिक्त था।" 'चाडालिका', 'चित्रागदा', 'नटीर पूजा' 'विसर्जन' आदि इसके उदाहरण है। किसी-किसी मे तो काव्य-कथोपकथन

ही है, जैसे 'कर्ण-कुन्ती', 'गाधारी'। कुछ व्यग्य-नाटिका भी है, जो सख्या मे कम नही है।

रवीन्द्र-कथा-साहित्य

रवीन्द्रनाथ का पहला उपन्यास 'करुणा' है। इसके बाद 'बहू ठाकुरानी का हाट,' 'राजर्षि', 'चार अध्याय', 'आँख की किरकिरी', 'नौका डूबी', 'गोरा' आदि उपन्यास निकले। 'चतुरग' और 'घरे-बाहरे' नाम के दो उपन्यासो मे उन्होने काव्य-भाषा का सबसे पहले व्यवहार किया। उपन्यास से कही अधिक कृतित्व उन्होने छोटी कहानियो मे दिखाया है। इसमे इन्होने एक नई ही धारा बहाई। इनके पहले बकिमचन्द्र और सजीवचन्द्र ने कहानियाँ लिखी जरूर थी, पर उन्हे उस कोटि मे नही रखा जा सकता, जिसे आज हम छोटी कहानियाँ कहते है। बगला मे इस धारा के प्रथम प्रवर्त्तक रवीन्द्रनाथ ही है।

वैविध्य का वैभव

निबन्ध, प्रबन्ध, यात्रा, आत्म-जीवनी, सस्मरण—यहाँ तक कि रवीन्द्र ने 'वर्ण-परिचय' लिखा। 'चित्र-सगीत' मे भी असाधारण प्रतिभा का परिचय दिया। 'गीताञ्जलि' पर उन्हे ससार-प्रसिद्ध नोबुल-पुरस्कार मिला था। मरने तक वे साहित्य-साधना मे अप्रतिहत शक्ति लेकर लगे रहे।

अक्षयकुमार

रवीन्द्र के समसामयिक गद्य-पद्य-लेखको मे कुछ प्रमुख लोग है—अक्षयकुमार बडाल, सत्येन्द्रनाथ दत्त, कामिनी राय, कालिदास राय, रजनीकान्त सेन, यतीन्द्र मोहन बागची, मोहितलाल मजूमदार, काजी नजरुल इस्लाम, प्रभातकुमार मुखोपाध्याय, रामेन्द्र सुन्दर त्रिवेदी, राखालदास वन्द्योपाध्याय आदि। अक्षयकुमार का जन्म कलकत्ता मे सन् १८६० मे हुआ था। कहा जाता है कि वे भी रवीन्द्र की तरह कवि बिहारीलाल के शिष्य थे। उनकी कविताओ मे भाव-प्रधानता है और वे शान्त-रस के कवि थे। 'प्रदीप' 'कनकाजलि', 'भूल', 'शङ्ख' आदि उनकी काव्य-कृतियाँ है।

सत्येन्द्रनाथ दत्त

सत्येन्द्रनाथ दत्त (१८८२-१९२२) शब्दो के कुशल मालाकार और नवीन छन्दो के दक्ष निर्माता थे। विदेशी भाव और भाषा की विशेषता को उन्होने आत्मसात् करके बगला-साहित्य को अपनी देन दी थी। उनकी रचनाएँ है—'सविता', 'सन्धिक्षण', 'वेणु और वीणा', 'फूलो की फसल,' 'कुहू और केका', 'तूलिका का लेखन', 'अभ्र-अबीर', 'विदाय-आरति' और 'अन्तिम समय के गान'।

कामिनी राय

श्रीमती कामिनी राय बाकरगज जिले मे सन् १८७८ मे पैदा हुई थी। बेथून कालेज से बी० ए० पास करके वे वही शिक्षिका भी बनी थी। उनकी कई सुन्दर काव्य-कृतियाँ है—'आलो ओ छाया', 'माल्य और निर्माल्य, 'धूप और दीप', 'पौराणिकी', 'अशोक-सगीत'। 'अशोक-सगीत' उन्होने अपने पुत्र अशोक की मृत्यु के बाद लिखा था।

कालिदास राय

कालिदास राय का जन्म वर्दवान जिले के करवी नामक गाँव मे सन् १८८९ ई० मे हुआ था। आपकी कविता रवीन्द्र के शब्दो मे बगाल की मिट्टी की तरह ही स्निग्ध और श्यामल है। उनकी कविता-पुस्तके है—'बल्लरी', 'ऋतु मगल', 'लाजाजलि', 'ब्रजवेणु', 'चित्रगीत गोविन्द'।

रजनीकान्त सेन

रजनीकान्त सेन बगला के गीतकारो मे श्रेष्ठ स्थान रखते है। ये स्वय सुकण्ठ गायक थे और लोग उन्हे कलकण्ठकोकिल कहते थे। उनके कई गीत तो लोगो की जबान पर रहते थे। जैसे —**मायेर देवा मोटा कापड माथाय तुले ने रे भाइ**। यानी जननी के दिये मोटे कपडे सिर पर उठा लो। 'वाणी', 'कल्याणी', 'अमृत', 'अभया', 'आनन्दमयी' ये इनकी रचनाएँ है। कैसर से इनकी मृत्यु हुई थी और अन्तिम तीन रचनाएँ इन्होने अस्पताल मे ही लिखी थी।

यतीन्द्रमोहन बागची

यतीन्द्रमोहन बागची गद्य और पद्य दोनो के मॅजे हुए लेखक थे। 'मानसी' और 'यमुना' नामक पत्रो का भी सम्पादन इन्होने किया था। 'पल्लीकथा', 'लेखा-रेखा', 'अपराजिता', 'जागरणी', 'बन्धु का गान' 'नीहारिका', 'पथ का साथी' आदि उनकी रचनाएँ है। 'केया फूल', 'अन्ध-बन्धु' आदि कविताएँ उनकी लोगो मे बडी मशहूर हुई।

मोहितलाल मजूमदार

मोहितलाल मजूमदार एक समर्थ समालोचक और श्रेष्ठ कवि थे। उनका जन्म कलकत्ता से कुछ ही दूर कॉचरापाडा मे हुआ था। कवि ईश्वरचन्द्र गुप्त का जन्म भी इसी गॉव मे हुआ था और प्रसिद्ध श्यामासगीतकार रामप्रसाद सेन इसीके पास के गॉव के थे। फलस्वरूप काव्य-प्रेरणा उन्हे उस आब-हवा से मिली। इनके प्रमुख काव्य ग्रन्थ है—'विस्मरणी', 'स्वप्न-पसारी', 'स्मर-गरल'। आधुनिक कवियो मे इनका आदर का स्थान है। समालोचना मे भी इन्होने समान कृतित्व दिखाया है। उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ है—'साहित्य जिज्ञासा' तथा 'साहित्य वितान'।

नजरुल इस्लाम

बगाल के तरुण-मानस को भावावेग से झकझोर देने वाले समर्थ कवि काजी नजरुल इस्लाम का स्थान कवियो मे बहुत ऊँचा है। ये पूर्व बगाल के रहने वाले है। पिछले महायुद्ध मे ये हवलदार होकर मेसोपोटामिया गये थे और देश लौटकर स्वदेश-प्रेम मे दीक्षित हुए। उनकी कविताओ मे ओज खूब है।

'तरुण' कविता

उनकी 'अग्नि-वीणा' की 'तरुण' कविता बडी ही प्रसिद्ध हुई। नवयुवको को उसने बडा प्रेरित किया। उस कविता की कुछेक पक्तियॉ :

बल वीर

आमि चिर उन्नत शिर

शिर नेहारि आमार नतशिर ओइ शिखर हिमाद्रिर ।
बल महाविश्वेर महाकाश फाडि
चन्द्र सूर्य ग्रह तारा छाडि
भूलोक द्युलोक गोलोक भेदिया
खोदार आरस आसन छेदिया
उठियाछि आमि चिर उन्नत शिर ।
आमि बन्धन हारा कुमारीर वेणी, तन्वि नयने वह्नि
षोडशीर हृदि सरसिज प्रेम उद्दाम, आमिधन्यि !
आमि उन्मन मन उदासीर
आमि विधवार बुके क्रन्दन श्वास, हा हुताश आमि हुताशीर ।

वीर, बोलो, हम चिर उन्नत सिर है । हमारे ऊँचे उठे मस्तक के आगे हिमालय का शिखर झुक गया है । कहो, इस महा विश्व के महाकाश को फाडकर सभी लोको को भेदकर, खुदा के आसन को छेदकर हमारा मस्तक ऊपर उठा है । हम कुमारी की खुली वेणी है, तरुण की नजरो के शोले है, षोडशी के हृदय-सरोज के उद्दाम प्रेम है । हम वन्य है । हम उदास उन्मन मन है, विधवा की छाती के अश्रुहत श्वास और निराशो के निश्वास है ।

उर्दू तर्ज-तरीके

गजलो मे नजरुल ने काफी रस-निविडता और शब्द-माधुर्य मे दक्षता का परिचय दिया है । कई कविताओ मे उर्दू के तर्ज-तरीके का भी समावेश उन्होने बगला मे किया है । जैसे, उनकी 'मुस्तफा कमाल' वाली कविता

ओइ छुटेछे पागली मायेर दामाल छेले कामाल भाइ,
असुर पुरे शोर उठे छे जोर से सामाल, सामाल भाइ,
कामाल तूने कामाल किया भाइ !

यानी, वह लो, पगली माँ के उद्दण्ड लडके कमाल के कदम दौड पडे है । असुरपुर से 'सँभलो-सँभलो' की आवाज उठ रही है । कमाल, तुमने कमाल कर दिया ।

शोर, जोर से, तूने, कमाल किया—ये प्रयोग देखने योग्य है ।

प्रभातकुमार

प्रभातकुमार मुखोपाध्याय ने कहानी लिखने मे काफी ख्याति कमाई। इनकी कहानियो मे बकिम का रोमास और रवीन्द्र की रस-दृष्टि विचित्र रूप से घुल-मिल गई है। उनके प्रमुख गल्प-ग्रन्थ है—'नवकथा, 'षोडशी', 'देशी और विलायती' तथा 'गल्पाञ्जलि'। उपन्यास भी उन्होने लिखा है, पर वैसी सफलता नही मिली।

विविध साहित्यकार

निबन्धो मे रामेन्द्रसुन्दर त्रिवेदी ने बहुत बडा काम किया और उन्होने बहुत-सी पुस्तके लिखी। प्रमथ चौधुरी ने 'बीरबल' के छद्म नाम से विरोधाभास लिखने मे बडा कृतित्व दिखाया। ऐतिहासिक उपन्यास लिखने मे पुरातत्त्वविद् राखालदास बन्द्योपाध्याय को बडा यश मिला। 'शशाक', 'धर्मपाल', 'करुणा' और 'मयूख' उनके उपन्यास है, जिनमे उन्होने गुप्त, पाल और मुगल युग के जीवन चित्र उपस्थित किये है। जलधर सेन ने भी करुण-रस की कुछ अच्छी कहानियाँ लिखी।

शरच्चन्द्र

कथा-साहित्य मे जो यश और लोकप्रियता शरच्चन्द्र को बगला मे मिली, वह औरो को क्या, रवीन्द्र तक को नही मिली। उनकी पहली कहानी 'मन्दिर' छद्म नाम से निकली थी और पुरस्कृत हुई थी। उसके बाद ही उनकी मशहूर कहानी 'बडी दीदी' निकली, जिससे उनका नाम फैल गया।

शरत् की नई दृष्टि

इस लोकप्रियता के पीछे उनकी नई दृष्टिभगी ही मूलतया रही है। उन्होने अपनी रचनाओ द्वारा यह दिखाने की चेष्टा की कि समाज के आभ्यन्तर को देखने की दृष्टि हृदय-वृत्ति तथा सार्वभौम न्याय-समन्वित होनी चाहिए। इसी अन्तर्दृष्टि से उनके नारी-चरित्रो की सृष्टि हुई और लोगो की नजरो मे उस हृदयहीन निपीडन के मार्मिक चित्र फूट उठे, जो कुसस्कार-

ग्रस्त सामाजिक विधानो से बगाल मे नारी जाति पर होते थे। लोगो ने कुसस्कार-शासित नारी-रूप की निस्सारता तथा कृत्रिमता समझी और उनका आन्तरिक उज्ज्वल रूप प्रकट हुआ। शरच्चन्द्र ने रवीन्द्रनाथ की तरह समस्याओ का समाधान देने का कही प्रयास नही किया है। एक कलाकार के समान उन्होने समाज के अन्तर्प्रदेश मे जहाँ काँटा चुभा है और जिस क्षत से पीडा टपकती है—इतना ही दिखाकर सन्तोष कर लिया है। इससे उनकी रचनाओ मे एक खास तरह का आकर्षण हम पाते है। उनकी शैली बडी सरल है, किन्तु है बडी जोरदार। कभी-कभी बे-तरह चिकोटी काटते है। सयत तो इतना कि जितना कहना चाहिए, उससे फिजूल एक भी शब्द नही कहते। उसमे रोमास और भावुकता को छेडकर जगाने की अद्‌भुत शक्ति है।

नारी-जीवन के जादूगर

उनका अपना जीवन भी घटनाओ से भरा था और उस पर उन्होने चार खण्डो मे 'श्रीकान्त' लिखा। 'गृह दाह', 'पल्ली समाज', 'अरक्षणीया', 'परिणीता', 'चरित्रहीन', 'पथ के दावेदार', 'शेष प्रश्न', 'विप्रदास' आदि उनकी प्रमुख पुस्तके है। सबमे नारी-चरित्र की सृष्टि अपूर्व है। 'चरित्रहीन' की सावित्री, 'शेष प्रश्न' की कमल आदि से समाज की दृष्टि को उन्होने नई नजर देने की चेष्टा की है। ग्रामीण जीवन के लिए साहित्य मे जैसे जादूगर प्रेमचन्द थे, नारी-चित्रो के वैसे ही जादूगर शरच्चन्द्र थे। उनकी रचनाओ मे बकिम और रवीन्द्र के प्रभाव के चिह्न है। चरित्रो मे एकागिता और पुनरावृत्ति की बू कभी-कभी आ जाती है—किन्तु उनकी सहानुभूति और आत्मीयता से उसमे जीवन है। रवीन्द्र और शरत् मे यही अन्तर है। रवीन्द्र मुख्यतया कवि थे, रस-स्थापना के जादूगर थे। उनकी रचनाओ मे आत्मिक सौन्दर्य-बोध की प्यास तो मिलती है, परन्तु दैनन्दिन जीवन की सीमा से वे ऊपर उठ जाते है। शरच्चन्द्र ने प्रात्यहिक जीवन-रस से अपने साहित्य की सृष्टि की है और अपने पात्रो के वे आत्मीय-से रहे है।

अव्यापक दृष्टि

सब-कुछ होते हुए भी उनकी दृष्टि की अव्यापकता के दोष से इन्कार नही किया जा सकता। उनकी आँखे अन्तर्भेदी और गहरी अवश्य रही, पर सुदूर-प्रसारी वैचित्र्य तक नही फैल सकी।

: ७ :

रवीन्द्रोत्तर काल

रवीन्द्र-काल की अन्तःप्रवृत्ति

रवीन्द्र के साथ-साथ बगला-साहित्य का एक युग समाप्त हो जाता है। उस युग के शिखर तक पहुँचने मे सदियो की साधना लगी, अगणित प्रतिभाओ का सहयोग रहा और अनेक भाव-विचारो के चढाव-उतार रहे। नई समस्याओ और नये आदर्शों ने अनेक प्रकार से साहित्य को अनुप्राणित और उद्बुद्ध किया, जिसके क्रमिक विकास का इतिहास इतने दिनो की साहित्य-सेवा के पृष्ठो मे सुरक्षित है। रवीन्द्र के साथ साहित्य के जिस युग का अवसान होता है, उस पर विदेशी प्रभाव की छाप है और उस युग की मुख्य प्रवृत्ति विशेष रूप से चित्त-चमत्कार तथा कल्पना-विलास रही है। अंग्रेजी शिक्षा के प्रवर्त्तन से समाज और व्यक्ति के जीवन मे एक नया द्वन्द्व आया था। उस द्वन्द्व मे तीक्ष्णता चाहे जितनी भी रही हो, था वह भाव-प्रधान ही। तत्कालीन साहित्य-रचना मे इस बात के पर्याप्त प्रमाण है कि लोगो मे नैतिक और राष्ट्रीय आत्म सम्मान के प्रति असीम आग्रह और जागरूकता थी, नये-पुराने के सामञ्जस्य की चेष्टा एव आदर्श प्रतिष्ठा की ललक थी। साहित्य के इस आन्तरिक पहलू के सिवाय उसके बाहरी गठन की ओर खासी लगन थी जिसके फलस्वरूप एक नई साहित्य-कला, अभि-

नव काव्यादर्श और उस आदर्श के अनुकूल सशक्त भाषा मिली ।

नई चेतना

अति आधुनिक साहित्य के साथ जिस नये युग का सूत्रपात हुआ है। उसकी मूल मर्म वाणी क्या है, सही-सही यह बता सकना तो अभी सम्भव नहीं, क्योकि उस पर विविध प्रयोग चल रहे है। वह किस लक्ष्य पर जाकर रुकेगी और तब तक उसकी रूपरेखा क्या होगी, नवीनता की इस बाट मे निश्चित तौर पर यह जान सकना सम्भव भी नही है। लेकिन एक बात समझ मे आती है कि आज की साहित्य-रचना का मूल आधार वास्तविकता के घेरे मे घिरा रहस्यमय मानव-स्वरूप है। मानवता और मानव-महिमा की प्रतिष्ठा के अपने-अपने ढग के प्रयास पिछले युगो मे ही झाँकने लगे थे। जिस साहित्य की शुरूआत मगल-काव्यो के देव-स्तव से हुई, उसी साहित्य मे ५०० वर्ष पूर्व चडीदास ने गाया था :

शुनह मानुष भाइ!
सबार ऊपर मानुष सत्य!
ताहार ऊपर नाइ!

यानी ऐ मनुष्यो, सुनो! सर्वापेक्षा बडा सत्य मनुष्य है, मनुष्य से बढ-कर दूसरा सत्य नही।

नई चेतना की पूर्वपीठिका

उस समय हृदय के प्रेम की अदम्य धारा काव्य-साधना के प्रभाव से राधा-कृष्ण के दो कूलो मे बँधकर बह रही थी। आज विद्यापति या चडी-दास की आलोचना करते हुए कई लोग कहते है कि उनकी वर्णित वासना नितान्त लौकिक है, अलौकिकता तो बहाना है। शायद यही हो। तब धर्म की आड लिये बगैर लोगो मे किसी वस्तु के लिए आस्था पैदा करना कठिन ही नही, असम्भव भी था। हम पिछले मगल-काव्यो मे भी जहाँ-तहाँ मानवता की प्रतिष्ठा के आग्रह की एक गुप्त धारा प्रवाहित होती देखते है। 'रामायण' के राम और 'महाभारत' के कृष्ण मे हमे देवता का भ्रम सहज

इसीलिए हो जाता है, चूँकि उनकी शक्ति मनुष्य की शक्ति-सीमा को पार कर जाती है। कवि भारतचन्द्र बगला के मध्य और आधुनिक युग के सन्धि-स्थल के समर्थ कवि थे और उनमे अस्तगत और उदयोन्मुख—दोनो ही युगो की छाया पडी है। परिपाटी के अनुसार उन्होने काव्य तो 'अन्नदा मगल' ही लिखा, किन्तु चूँकि युगधर्म का तकाजा था इसलिए उसमे दैवी स्वरूप मे ही लौकिक और गार्हस्थिक जीवन की पूरी झलक उतर आती है। शिव-उमा के विवाह का जो जीवन-चित्र उसमे आया है, वह आज के गार्हस्थिक जीवन मे आये दिन होने वाली घटनाओ की याद दिलाता है। उमा नवयौवना हैं, शिव बूढे। **वृद्धस्य तरुणी भार्या**! माँ तो दूल्हे की सूरत देखकर ही जामे से बाहर हो जाती है। वह आँख रहते यह मक्खी कैसे निगल गई।

लौकिकता का आरोप

कई लोग इसे एक सास्कृतिक मर्यादा पर धक्का कहेगे, पर यह उस युग-धर्म को अनिवार्य विवशता है, जिसके मुताबिक अलौकिकता के माया प्रकाश पर लौकिकता की छाया गहरी होती आ रही थी। भारतचन्द्र के बाद यह लौकिकता कवियालो मे और तीखी तथा स्पष्ट हो उठी। कवि-यालो का जमाना बगाल मे कोई सौ साल तक रहा। इनके गीतो से बंगाल का गाँव-गाँव मुखरित रहा। आधार तो इन्होने भी दुर्गा, काली, राधा-कृष्ण, पार्वती आदि देव-चरित्रो का लिया, पर उनको ओट लेकर मनुष्य का प्रेम-गीत ही प्रखरता से गूँजता रहा। उन रचनाओ मे कला की दृष्टि से बहुत बडा महत्त्व तो नही मिलता, पर अकृत्रिमता का एक जोर जरूर है, जो जी को छूता है। जैसे, प्रेम पर दो बद देखिये .

भालो बासिबे बोले भालो बासिने
आमार स्वभाव एइ तोमा बोइ आर जानिने।

यानी, तुम भी प्यार करोगे, मेरा प्यार इसलिए नही है। मेरी लाचारी है कि मै तुम्हारे सिवा और कुछ नही जानती।

धरती और मनुष्य की महिमा

अंग्रेजी-अंग्रेजों के संसर्ग से जिस नवीन युग का आगमन साहित्य में हुआ, उसके प्रथम छोर के कवि ईश्वरचन्द्र का भी साहित्यिक विषय रहा मनुष्य। नये युग के निर्माता रवीन्द्र ने धरती और मनुष्य की महिमा को और ऊँचा उठाया। उन्नीसवीं सदी के आरम्भिक दिनों में यूरोप में मनीषी कोमट ने भी यह आवाज उठाई थी कि स्वप्नमय आकाश की ओर आँखें न उठाकर पाँवों के पास की धरती की ओर देखो, देखो उस जीवन को, जो वैचित्र्य की महिमा से महान् है और जो अपने अनगिन रंगीन पन्ने खोल-कर खुली किताब की तरह तुम्हारे सामने स्पष्ट है। रवीन्द्र ने इस नये सुर को रंग-रूप से व्यापक बनाया। अपनी एक कविता में उन्होंने नारद के मुख से वाल्मीकि को यह सन्देश दिलाया है। वाल्मीकि के मुख से आदि-श्लोक निकला। नारद ने आकर कहा, महाभाग मुझे ब्रह्मा ने आपके पास यह पूछने भेजा है कि वह जो आपको वाणी का दुर्लभ वरदान मिला है, उसका आप कौन-सा उपयोग करेंगे? वाल्मीकि ने कहा, वाणी के लिए और सौभाग्य क्या हो सकता है कि उससे देव-गुण गाया जाय! नारद ने कहा, नहीं-नहीं, देवों के स्तव बहुत गाये गए, तुम उसमें मनुष्य को गाकर देव बना दो।

जीवन की नई दृष्टि

भावादर्श की यही गुप्त फल्गुधारा सदियों की मञ्जिल पार करके रवीन्द्रोत्तर साहित्य में खुलकर फैल गई है। किन्तु इसका रूप, धर्म और संस्कार कुछ दूसरा है। अवश्य उसमें परिवेश और परिस्थिति का बहुत बड़ा हाथ है। आज जगत् और जीवन को देखने की जो दृष्टि है, वह वास्तवतः पीडित है। पिछले दिनों की प्रतिमाएँ उस सत्य-सुन्दर का मन्दिर बनाने में लगी रहीं जो शाश्वत है। उसकी तब गुञ्जाइश भी थी। उन दिनों जीवन अनाचार और उत्पीडन से इतना दीन और अनिश्चित नहीं था, परवशता से आत्मा की चेतना और आनन्द का ऐसा दम नहीं घुट

रहा था, जीना ऐसी एक दयनीय समस्या नही थी। युद्ध की विभीषिका ने जीवन के मूल्य को इतना हेय और नगण्य नहीं बनाया था, सुख और शान्ति पर हिंसा की ऐसी लोलुप आँखे नही थी। तब जीवन किसी कुशल शिल्पी का एक ऐसा चित्र था, जिसकी पृष्ठभूमि बडी खुली और व्यापक थी। आज के मनुष्य का स्थान समस्याओ के मेले की रेलम-पेल मे सकुचित अनिश्चित और व्यस्त है। ऐसी-ऐसी घटनाएँ समाज पर से गुजर गई है कि यह पेड पतझार से सूना ही नही हो गया है, बल्कि उसका सारा जीवन-रस सूख गया है। ऐसी-ऐसी अनुभूतियाँ और अभिज्ञताएँ मनुष्य के लिए प्रत्यक्ष हो गई है, जो कवि-कल्पना मे भी नही आ सकती।

मनोविज्ञान और जडवाद

समाज आज ऐसी समस्या-सकुल सकीर्ण परिधि पर आ टिका है, जिस पृष्ठभूमि मे मनुष्य का नया चित्र ऐसा ही बन सकता है। इस पर से विज्ञान ने उसकी दोनो आँखो को दो तरह की दृष्टि दी है—मन के लिए फ्रायड-प्रतिष्ठित मनोविज्ञान और जीवन-विचार के लिए मार्क्स का जडवादी तुला-दण्ड। लिहाजा आज जीवन का आदर्श बहुत बदल गया है और उसीके अनुरूप बदल गया है साहित्य का प्राण-धर्म। नई चेतना का यह स्पन्दन बगला-साहित्य में विभिन्न रूपो मे धडक रहा है।

काव्य-साधना

रवीन्द्र ने बगला-कविता को उत्कर्ष के जिस उच्चतम शिखर पर आरूढ किया, उसके बाद किसी ऐसी युगान्तरकारी प्रतिमा के अभी दर्शन नही हुए जो उस ऊँचे कँगूरे पर माणिक की तरह जडा जा सके। काव्य-रचना की गति अवश्य ही अवरुद्ध नही हुई है, पर कविता का प्रवाह रुक-सा गया है और उसमे अभिनव कल-कल्लोल नहा है। बगला के एक प्रसिद्ध आलोचक ने तो यह कहा है कि—'बगला-कविता आज मर गई है और केवल मर ही नही गई है, भूत बनकर बडा उपद्रव कर रही है।' शायद लोग इसे अत्युक्ति कहे, मगर इतना जरूर सत्य है कि बगला-काव्य के

क्षेत्र में कुछ उल्लेखनीय प्रगति नहीं हुई है। कुमुदरंजन मल्लिक, नरेन्द्र-देव, जीवनानन्ददास, प्रेमेन्दु मित्र, बुद्धदेव वसु, जसीम उद्दीन, वाणी राय आदि ने काव्य साधना द्वारा वर्तमान साहित्य-धारा के इस अङ्ग की सेवा की है। काव्य के क्षेत्र में कोई ऐसी प्रवृत्ति नहीं रही, जो रवीन्द्र की लेखनी से अछूती रह गई हो। समान रूप से उन्होंने भाव और शैली के हर प्रकार पर अपनी अपराजेय कुशलता की छाप छोड़ी है।

प्रगति-साहित्य

फिर भी कुछ नवीनता की धुँधली झाँकी प्रगति साहित्य की दिशा में मिलती है। उस आदर्श की साहित्य के लिए उपयोगिता, स्थायित्व और भावी स्वरूप का विचार यहाँ अपेक्षित नहीं है, किन्तु कुछ लोग है, जिन्होंने लोगों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया है। शैली में बगला में 'गद्य छन्द' एक नई उपज है। बगला में मधुसूदन ने पहले अमित्राक्षर से एक क्रान्ति की, वह क्रांति भविष्य का कल्याण ले आई थी। इस गद्य-छन्द का अनागत जाने क्या हो, कैसा हो। जहाँ तक हमारा खयाल है, इस नामकरण में उपयुक्तता नहीं है। छन्द को अंग्रेजी में मेजर कहते हैं। सगीत जैसे तालों द्वारा एक निश्चित सीमा में बँधा रहता है, कविता की वैसी सीमा-योजना छन्द करता है। गद्य में स्पन्दन तो हो सकता है, जिसे अंग्रेजी में रिदम् कहते है। क्योंकि सुष्ठु ध्वनि-योजना गद्य में भी सम्भव है। एक अंग्रेज आलोचक ने इसे 'अदर हार्मोनी' कहा है। जो भी हो, गद्य में छन्द नहीं होता। किन्तु प्रगतिवादी साहित्यकारों की रचना लगभग इसी में होती है। एक नमूना :

> **भागा देवालेर फाटले एकटि घासेर गुच्छि अनेक दिन**
> **जीवनेर जन्य जूझेछिल—**
> **प्रतिदिन देखताम कि तार प्राणान्त प्रयास एकटि पुस्पित**
> **प्रशाखा प्रसारित करबार जन्य।**
> **एक दिन बुझि एकटि फिके बेगुनी रंगेर छोट्टो फूल फुटेछिलो**

किन्तु मूल तखन देउले होये गेछे—सब शुकिये होलूद होये गेल।

टूटी दीवार की फॉक मे एक गुच्छा घास बडे दिनो से जीवन के लिए जूझ रही थी। मै रोज देखता था, उफ, एक खिली डाल फैलाने का कैसा उसका प्राणान्तक प्रयास है! शायद एक दिन उसमे एक फीका बैगनी रग का छोटा-सा फूल भी खिला था। लेकिन तब तक उसकी जड दिवालिया हो गई थी—सब सूखकर पीला हो गया।

'पूर्वाशा', 'परिचय' आदि मासिक पत्रो द्वारा इस प्रवृत्ति को काफी प्रोत्साहित किया जा रहा है।

कथा-साहित्य

आज का बगला-साहित्य कहने से उसके जिस समृद्ध अग पर नजर पडती है, वह है कथा-साहित्य। 'आलालेर घरेर दुलाल' मे जिस अग की नीव कभी पडी थी, इसी अरसे मे उसका ऐश्वर्यमय विस्तार देखने योग्य हो आया है। बकिम, रवीन्द्र और शरत् ने इस क्षेत्र मे नई-नई धारा का सूत्रपात किया और आज साहित्य की वह शाखा खूब पल्लवित-पुष्पित हो उठी है। आज के बगला-कथाकारो मे सर्वापेक्षा प्रमुख है—स्वर्गीय विभूति-भूषण वन्द्योपाध्याय, ताराशकर वन्द्योपाध्याय, विभूतिभूषण मुखोपाध्याय, वनफूल (बलाइ चॉद मुखोपाध्याय), परशुराम, शैलजानन्द मुखोपाध्याय, अचिन्त्यकुमार सेन गुप्त, बुद्धदेव बसु, प्रेमेन्दु मित्र, माणिक वन्द्योपाध्याय, शरदिन्दु वन्द्योपाध्याय, मनोज बसु, सरोजकुमार राय चौधरी आदि।

विभूति वन्द्योपाध्याय

अपनी पहली ही पुस्तक 'पथेर पॉचाली' मे विभूति बाबू ने जिस अभिनव अन्तर्दृष्टि का परिचय दिया कि वे साहित्य के एक स्थायी आसन पर आसीन हो गए। इनकी लेखन-शैली जैसी अपने ढग की है, वैसे ही इनके विषय और पात्र है, जो रस-पिपासुओ को नई सामग्री देते है। इनकी रचना मे कल्पना की मौलिकता है, कवित्व है। जीवन और जगत् को डूबकर देखने के बजाय वे एक राहगीर के समान तटवर्ती इलाको के

शोभा-सौन्दर्य को एक दर्शक की तरह ही देखते है और उस दृष्टि के पीछे जो उनका रसस्रष्टा बैठा है, वही उनके रगीन चित्र की मनोरम छटा औरो के लिए रच देता है। फलस्वरूप पुस्तक मे समस्या की जटिलता नही है, घटना-वैचित्र्य नही है, न सुख की उत्तेजना है, न दु.ख का हाहाकार। मानव-मन को मथ डालने वाली मनस्तात्त्विक की भी नजर इसमे नही है, फिर भी पुस्तक रुचती है, क्योकि इसमे सहज अनुभूतियो की निष्कपट वर्णन-माधुरी है। प्रकृति की ऐश्वर्यमयी पटभूमि मे एक नादान मानव-यात्री की अन्तर्कथा है। गीतिकविताकार की तरह इस औपन्यासिक की कल्पना आत्मकेन्द्रिक है। एक आलोचक को इस पुस्तक के बारे मे उन्होने स्वय ही एक बार कहा था—इस उपन्यास की रचना मे किसी विशेष स्थान-काल-पात्र के प्रति पक्षपात नही है। इसके वर्णन द्वारा उन्होने जिस धारणा को अनुभूति गोचर करना चाहा था, वह है विपुल रहस्यो के अनुध्यान से जीवन के स्वरूप की उपलब्धि—वास्टनेस ऑव स्पेस एण्ड पासिग टाइम।

गॉव, प्रकृति, शिशु—इन सबके प्रति उन्हे अगाध प्रेम था। अपनी दूसरी पुस्तक 'आरण्यक' मे उन्होने इसका और भी गाढा परिचय दिया है। इस पुस्तक मे नायक-नायिका-जैसी कोई चीज़ नही है—प्रेम-विरह का रोना-गाना नही है। छाया-छवि से दूर देहात के ग्रामीण पात्र अपना निष्कपट जीवन लिये सामने आते है, जाने-अजाने फूल, चीन्हे-अन-चीन्हे पेड-पौधे, पछी, सुबह-सॉझ, धूप-ॲधेरा—इन्ही सामग्रियो पर सारी पुस्तक की भित्ति खडी है। फिर भी उसमे एक प्रवाह है, रस है, रुचि को पकडे रखने की कूवत है। विभूति बाबू की अन्य रचनाओ मे भी उनकी यह विशेषता देखी जा सकती है।

ताराशकर

दृष्टि और सृष्टि के लिहाज से कहानी और उपन्यास दोनो ही मे ताराशकर बन्द्योपाध्याय ने समर्थ प्रतिभा का परिचय दिया है। उनकी भेदक ऑखे जैसे मनुष्य की छाती मे पैठकर मन को देखती है, कान लगाकर जैसे वे माटी की धडकन को सुनते है। बगाल के विभिन्न इलाको के

जीवन का बहुत ही सच्चा और गहरा अध्ययन उनकी कृतियो मे मिलता है। 'रायकमल' मे बगाल के वैष्णव-जीवन का एक कारुणिक रूप है, 'धात्री देवता' मे वीरभूम के लोक जीवन के जीते-जागते चित्र है, और 'सदीपन-पाठशाला' मे बगाल के कैवर्तो की जीवन-यात्रा है। चरित्र के वैचित्र्य का ऐसा वैभव, उनकी ऐसी वास्तविकता बहुत कम कथाकारो मे पाई जाती है। 'हाँसुली बाँकेर उपकथा' मे तो चरित्रो की जैसी एक नुमाइश है। उनके जीवन-दर्शन का एक निजी पहलू है। वे यह जानते है कि प्रकृति के कानून ही मनुष्य की नियति नही है, उन कानूनो पर, प्रकृति पर नियति का शासन है। इसीलिए उन्होने समाज के सभी स्तरो के पात्रो को आधार बनाया है। सभी प्रकार के जीवन और जीवन की हर वास्तविकता और विरूपता का अच्छा-बुरा पहलू उनकी कृतियो मे मिलता है। एक आलोचक ने ठीक ही कहा है, 'ताराशकर उन कलाकारो मे है, जो विश्लेषण के बजाय आविष्कार करते है, व्याख्या के बजाय सृष्टि करते है और प्रमाणित करने के बजाय प्रदर्शित करते है।' उनकी रचनाओ मे युग की चेतना धडकती है।

विभूति मुखोपाध्याय

विभूति भूषण मुखोपाध्याय मुख्यतया हास्य और वात्सल्य के सफल कथा-शिल्पी है। प्रभातकुमार मुखोपाध्याय ने जिस शिष्ट हास्य की भित्ति पर अपनी साधना का महल खडा किया, विभूति बाबू राही तो उसी लीक के है, पर उन्होने उसे और भी व्यापक तथा गम्भीर बनाया है। कथा मे वात्सल्य-सम्बन्धी रचना मे तो उन्हीका जैसे एकाधिपत्य है। 'स्वर्गादपि गरीयसी' नाम के बृहद् उपन्यास मे उन्होने अपनी करुणा-कोमल ममत्वमयी दृष्टि का बडा सुन्दर परिचय दिया है। उनकी अन्तर्दृष्टि की ईमानदारी और गहराई पर आस्था होती है। 'नीलागुरीय' आदि उनकी अन्य कई रचनाएँ है, जिनमे जीवन के उच्छ्वास और करुणा की गलबाँही के बडे मनोरम चित्र है।

वनफूल

आधुनिक कथाशिल्पियो मे वनफूल का अपना स्थान है। उनकी दृष्टि बहुत कुछ जडवादी है और जीवन के रूप को वे विज्ञान तथा इतिहास के आधार पर देखते है। इसलिए चरित्रो मे आध्यात्मिक रहस्य का जो जादू प्राणवत्ता का सञ्चार करता है, उसका इसमे अभाव है। फिर भी एक क्षिप्र-क्षमता इनकी लेखनी मे है, जो पाठक-चित्त को आकर्षित करती है। 'जगम', 'मानदण्ड', 'डाना' आदि उपन्यास तथा अनेक कहानियाँ इनकी लिखी हुई है। लिखने की शक्ति इनमे खूब है। शैली बडी चुस्त-दुरुस्त, भाषा चलती हुई होती है। व्यग्य का जोर है। मजेदार चीजे लिखने मे विशेष निपुण है। 'विद्यासागर', और 'मधुसूदन' दो नाटक भी इन्होने लिखे है।

परशुराम

परशुराम की रचनाओ से हिन्दी के पाठक परिचित है। उनकी उच्च-कोटि की हास्य-रचनाएँ हिन्दी मे अनूदित होकर बहुत पहले ही आ चुकी है। उनकी मुख्य रचनाएँ है—'गड्डलिका (भेडिया धसान), 'कज्जली', 'हनु-मानेर स्वप्नभग'। हास्य मे इन्होने एक सर्वथा नई शैली का प्रवर्त्तन किया है और बगला मे अद्वितीय है। इधर बहुत दिनो से वे लिखने से विरत है। हाल मे उनकी कहानियो का एक और सग्रह निकला है—'गद्य-पद्य'।

रवीन्द्र मैत्र

रवीन्द्र मैत्र बहुत थोडी ही उम्र मे चल बसे, किन्तु उसी अरसे के उनके कृतित्व से बगला-साहित्य बहुत आशान्वित हो उठा था। उनमे अद्भुत प्रतिभा थी। कविता, कहानी, व्यग्य, उपन्यास, नाटक—सब कुछ वे लिख सकते थे और उस लिखने मे उनकी पैनी निगाह और क्षमता का परिचय मिलता था। 'त्रिलोचन कविराज', 'मानमयी गर्ल्स स्कूल'—ये दो रचनाएँ उनकी बडी लोकप्रिय हुई। 'घृत कुम्भ' नाम का उपन्यास अधूरा

ही रह गया। उनकी शैली में सादगी थी, किन्तु शक्ति और ओज था।

शैलजानन्द

पिछले दिनो बगला मे 'कल्लोल' के प्रकाशन से प्रतिभाशाली कथाकारो की एक अच्छी गोष्ठी सगठित हुई थी। उन कथाकारो मे से कुछ की प्रतिभा का प्रकाश तो बाद मे काफी फैला और कुछ साहित्य-सेवा से विरत हो गए। शैलजानन्द मुखोपाध्याय आज बहुत कम लिखने लगे है, किन्तु उनमे कथा-शिल्प की शक्तिशाली प्रतिभा थी। आञ्चलिक समाज-जीवन तथा चरित्रो पर कथा-निर्माण की प्रवृत्ति बगला मे पहले-पहल उन्ही-मे दिखाई दी। मानभूम की खानो मे काम करने वाले मजूर जीवन की झाँकी उनकी कहानियो मे बडी निखरी है। 'कचला कुठी', 'नरमेव', 'अतसी', 'वाणभासि' आदि उनकी सुन्दर कृतियाँ है।

अन्यान्य

अचिन्त्यकुमार, बुद्धदेव बसु और प्रमेन्द्र मित्र ने कथा-साहित्य मे खासी प्रतिष्ठा पाई है। इनमे से अन्तिम दो प्रगतिवाद क समर्थक है और गद्य-पद्य दोनो मे समान कुशलता से, अप्रतिहत उत्साह से लिख रहे है। बुद्धदेव की रचनाओ मे समाज-चित्र की कही-कही नग्नता भी खूब उभरती है। वास्तविकता का बडा उग्र रूप उनकी रचनाओ मे पाया जाता है। माणिक वन्द्योपाध्याय के अनेक उपन्यास लोकप्रिय हुए है, जिनमे से मुख्य है, 'दिवारात्रिर काव्य', 'पुतुल नाचेर इतिकथा', 'पद्मादीघिर माझी', 'शहरतली'। मनस्तत्त्व और कवित्वमय कल्पना उनकी विशेषता है। वास्तविकता की ओर झुकाव है। शरदिन्दु वन्द्योपाध्याय की कहानियो मे एक स्वतन्त्र शैली के दर्शन मिलते है। मरुओ सघ, हासिकान्ना, तन्द्रा-हरण, रात्रि आदि कहानियो की प्राञ्जल भाषा, प्रवाह, कल्पना-शक्ति का सुनिपुण सामञ्जस्य देखने को मिलता है। शरदिन्दु बहुत दिनो से साधना-निरत है और उनकी रचनाओ की सख्या कम नही है। इनके अतिरिक्त मनोज बसु, सरोजकुमार राय चौधुरी, सतीनाथ भादुडी, अमला देवी, प्रमथनाथ विशि आदि भी साहित्य के इस अग की श्री-समृद्धि मे दत्तचित्त

है। सरोजकुमार राय चौधुरी के कई उपन्यास निकले है, जिनमे 'मयूराक्षी', 'गृहकपोती', 'सोमलता' अच्छे बन पडे है। ये तीनो उपन्यास एक-दूसरे के पूरक है। सतीनाथ भादुडी भी अपने पहले ही उपन्यास 'जागरी' से मशहूर हुए। 'ठोंटाइ चरित मानस' उनकी दूसरी कृति है। 'सम्बुद्ध', प्रमथनाथ विशि ने रम्य-रस की कई सुन्दर रचनाएँ की है।

कथा की नई अन्तर्कथा

आञ्चलिक जीवन और समाज-परिचय की इन दिनो बगला-उपन्यासो मे धूम-सी मची हुई है। कमो-बेश सभी कथाकारो का ध्यान इस ओर है। मनोज बसु की कहानियाँ ऐसी ही होती है। रामपद मुखोपाध्याय ने ध्वसोन्मुख राढ के समाज का चित्र उपस्थित किया है। सामन्ती युग के पात्रो की सृष्टि का युग तो बहुत पहले लग गया था, मध्यवित्तो की ओर भी अब उतना ज्यादा ध्यान नही हैं, जितना कि निम्न स्तर के जीवन का। समाज के उपेक्षित पात्रो को साहित्य मे धडल्ले से स्थान मिलने लगा है।

साहित्य के अन्य अङ्ग

यात्रा और सस्मरण-सम्बन्धी अनेक अच्छी पुस्तकें बगला मे निकली है, जो शैली की श्रेष्ठता के लिए बडी लोकप्रिय हुई है। उनमे से डॉ० मुज्तबा अली का 'देशे-विदेशे', यायावर का 'दृष्टिपात', अन्नदाशकर राय का 'पथे-प्रवासे', 'चार याता देश', अचिन्त्यकुमार का 'परम पुरुष रामकृष्ण', प्रबोध सान्याल का 'महाप्रस्थान के पथ पर', जलधर सेन का 'हिमालय' आदि बहुत ही सुन्दर है। साहित्यालोचन-सम्बन्धी शास्त्रीय ढग की पुस्तकें, 'व्यक्तिगत निबन्ध', 'प्रबन्ध-साहित्य', अन्य प्रकार के साहित्य की ओर भी लेखन-प्रकाशन मे प्रयास चल रहे है। वास्तव मे तो बगला-साहित्य की यह श्री-समृद्धि ज्यादा-से-ज़्यादा सौ साल की है। इतने मे किसी साहित्य का बालिग होना भी एक महत्त्व रखता है। इसी अरसे मे बंगला ने विविध दिशाओ मे जो प्रगति की है, उसे पर्याप्त तो नही, आशानुरूप तो कहना ही पडेगा। उसके भविष्य की प्रखर उज्ज्वलता का आशामय विश्वास होना अनिवार्य है।

हुवइ (१२–२,६, २६–१०, २१) =होता है
हुवइ छइ (२१–११)=होता है
हुवउ (२१–३)=हुआ
हुवा (६–५, १४–१२)=हुए
हुवा छइ (२१–८)=हुए हैं
हूंता (२६–२३)=से
हूंती (१–५)=(तू) थी
हूवइ (१४–७)=होता है
(५–२)=हुआ
हूवउ (१४–१३)=हुआ
हूवा (११, २१–६)=हुए
हे (२१–१०)=हे
हेक (१५, २६–४)=एक
हेकाणवइ (५–३)=इक्यानवे
हेता (२१–१३)=?
हैमर=घोड़े (हयवर)
हो (६–७, ६, १७–३, २१–५, ४) =हे, अरे
होइ (१२–२)=होता है
होइ रह्यउ (२६–१७)=हो रहा है
होइसउं (१४–६)=होऊंगी
होई (२१–१०)=होता है
होयइ (१–५, ६–८)=होता है, हो सकता है
होवण लागउ (२१–२)=होने लगा